सतत विकास के आयाम

डॉ. अमरजीत सिंह

Satat Vikas Ke Aayam

सतत् विकास के आयाम

डॉ. अमरजीत सिंह
प्रवक्ता
राजनीति विज्ञान
महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय
चित्रकूट, सतना (म.प्र.)

मधुकर प्रकाशन, आगरा

प्रकाशक : मधुकर प्रकाशन
28, मंगलम् विहार, सिकन्दरा-बोदला रोड,
आगरा-282007
फोन-0562-6534747, 9319176095

द्वितीय संस्करण : 2007
मूल्य : 300 रु०

भारत में मुद्रित

मधुकर प्रकाशन, 28, मंगलम् विहार, सिकन्दरा-बोदला रोड, आगरा-282007 द्वारा प्रकाशित एवं राजपूत कम्प्यूटर, सेक्टर-4/216, बोदला, आगरा तथा एन.सी. प्रिंटर्स, आगरा द्वारा मुद्रित।

विषय–सूची

दो शब्द

आधुनिक युग विकास का युग है। सभी विकास की बातें कर रहे हैं, किन्तु अजीब विडम्बना यह है कि विश्व में विकास के नाम पर अमेरिका, इराक पर संहारक अस्त्रों की बरसात कर रहा है। हम विकास की बात करते हैं, किन्तु संसार की 70 प्रतिशत आबादी गरीब देशों में निवास करती है। गरीबी के दुष्चक्र में फंसी जनता की दारुण दरिद्रता से छुटकारा दिलाने के नाम पर इन देशों के संसाधनों का इतना शोषण किया जा रहा है कि भावी पीढ़ी को सम्भवतः उतनी सुविधाएँ भी प्राप्त नहीं हो सकेंगी जितनी वर्तमान में उपलब्ध हैं।

लोग यह भूल जाते हैं कि हमें इसी पृथ्वी पर रहना है। अभी तक किसी ऐसे दूसरे ग्रह की खोज नहीं हुई है जहाँ पर जीवन पाया जा सके। हमारे विकास की प्रक्रिया जीवन के अस्तित्व की समस्या को और जटिल करती जा रही है। आवश्यकता इस बात की है कि आने वाली पीढ़ियों के लिए हम यह सोचें कि पृथ्वी किस तरह रहने योग्य बनी रहे। यदि हम अपनी वर्तमान जिम्मेदारियों को नहीं समझते हैं तो आने वाली पीढ़ी हमें कभी माफ नहीं करेगी। वर्तमान में विकास के नाम पर जो भी काम किया जा रहा है, उसका उपयोग लम्बे समय तक किया जा सके, साथ ही वर्तमान के विकास की प्रक्रिया हमारे भावी पीढ़ी की सुविधाओं की कीमत पर न हो ।

वर्तमान समय में विकास के नाम पर की जा रही प्रक्रियाओं के कारण तथा 20वीं शताब्दी में हुई तकनीकी प्रगति के कारण आज वनों का विनाश हो रहा है, वायुमण्डल ओजोन परत में छिद्र हो गया है, धरती पर पीने के पानी के स्रोत सूख रहे हैं, विश्व की जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ रही है। जल, वायु,, ध्वनि, मृदा, एवं रासायनिक प्रदूषणों के चलते मानवता का भविष्य अंधकारमय हो गया है।

इन समस्याओं से निपटने के लिए एक सकारात्मक कदम के रूप में; रियो सम्मेलन; आयोजित हुआ, जिसे, पृथ्वी सम्मेलन के नाम से जाना जाता है। एजेण्डा 21 इस सम्मेलन में किए गए विचार मंथन का परिणाम है। इसके अंतर्गत विश्व के समक्ष उत्पन्न गम्भीर चुनौतियों का सामना करने के लिए एक कार्य–सूची तैयार की गयी है। इस कार्य–सूची के अनुसार विश्व के अधिकांश देशों में यद्यपि आंशिक क्रियान्वयन प्रारम्भ हो गया है, किन्तु वह समुद्र में एक बूँद के सदृश है, जो वर्तमान समस्याओं के समक्ष अस्तित्वहीन साबित हो रहा है।

अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर कार्यरत अनेक संस्थाए संयुक्त राष्ट्र संघ की प्रेरणा से इस दिशा में एक अभियान शैली में जुटी हुई हैं। इसके अलावा अनेक राष्ट्रों ने अपने नीति निर्धारण में इनकी प्राथमिकता से अंगीकृत करके क्रियान्वयन के लिए भूमिका तैयार कर ली है। विश्व में इन प्रयासों के चलते अब जागरूकता भी बढ़ी है। आवश्यकता इस बात की है कि सच्चे अर्थों में प्रकृति एवं मानव के बीच तादात्म्य निर्मित हो जाये।

प्रस्तुत पुस्तक में सतत् विकास की अवधारणा एवं आयाम को स्पष्ट करने के लिए विकास की पृष्ठभूमि का गहन विश्लेषण किया गया है। विकासशील देशों में विकास का मुद्दा ग्रामीण विकास से जुड़ा हुआ है अतः इस पुस्तक में ग्रामीण विकास एवं भारत में किये जा रहे प्रयत्न का संक्षिप्त विवरण भी प्रदान किया गया है।

महात्मा गाँधी वह पहले विचारक हैं जिन्होंने विकास की प्रक्रिया में प्रकृति एवं मानव की परस्पर पूरकता पर विशेष बल दिया था। गाँधीजी के विचारों से प्रेरित होकर उनके शिष्य जे. सी. कुमारप्पा ने स्वतंत्रता के पूर्व में ही सतत् विकास की मूल भावनाओं को व्यक्त करने वाली पुस्तक *'इकोनामी आफ परमानेन्स'* की रचना किया था। प्रस्तुत पुस्तक में जे.सी. कुमारप्पा के विचारों को भी स्थान देकर उनके महत्व को प्रतिपादित किया गया है।

पुस्तक में सतत् विकास के लिए एक आवश्यक प्रादर्श एवं उसमें समाहित आयामों पर पृथक्-पृथक् गहन विश्लेषण किया गया है तथा यह प्रयास किया गया है कि इसमें समस्त प्रमुख आयाम समाहित हो जायें।

यद्यपि सतत् विकास से सम्बन्धित अनेक साहित्य उपलब्ध हैं, किन्तु इस पुस्तक का मकसद यह है कि, हिन्दी में इस विषय पर एक ऐसी पुस्तक तैयार की जाय जो हिन्दी भाषी लोगों को इस विषय के प्रति जागरूक बनाये। इसके साथ ही साथ इस पुस्तक के माध्यम से विकासशील देशों में उत्पन्न समस्याओं के निराकरण के लिए एक कार्य योजना तैयार किया जा सके।

इस पुस्तक को लिखने में अनेक लोगों ने प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से विभिन्न प्रकार के सहयोग प्रदान किये हैं। इस पुस्तक को लिखने की प्रेरणा देने के लिए तथा पुस्तक का प्राक्कथन लिखने के लिए प्रो. टी. करुनाकरन, कुलपति, महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट का मैं ह्रदय से आभारी हूँ। ग्राम स्वराज संस्थान के अपने सहयोगी तथा संकाय सदस्य डॉ. राजेश त्रिपाठी का विशेष आभारी हूँ जिनके द्वारा पुस्तक की पाठ्य-सामग्री का आलोचनात्मक निरीक्षण किया गया है।

डॉ. त्रिभुवन सिंह, एवं श्री धनन्जय सिंह तथा अपने स्टाफ के सहयोगी श्री रामनरेश, श्री संजय कुमार एवं मो. नफ़ीस का भी शुक्रगुजार हूँ जिन्होंने अपनी मेहनत से इस पुस्तक का प्रकाशन मुमकिन बनाया है।

इस पुस्तक में इस्तेमाल की गयी सामग्री विभिन्न पुस्तकों, अखबारों, व्याख्यानों एवं सेमिनारों से संकलित की गयी है। जिन-जिन श्रोतों से सामग्रियाँ संकलित की गयी है, सबका नाम दिया जाना संभव न होने के कारण मैं उन सभी लोगों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने जाने-अनजाने इस कार्य में योगदान प्रदान किया है।

अन्त में पुस्तक को प्रकाशित एवं मुद्रित करने के लिए बी. एस. शर्मा एण्ड ब्रदर्स, आगरा (उ.प्र.) के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना अपना कर्तव्य समझता हूँ, जिनके प्रेरक एवं अथक प्रयासों के फलस्वरूप प्रस्तुत यह पुस्तक आपके हाथों में है। पुस्तक में मुद्रण आदि सम्बन्धी कोई त्रुटि है तो उसके लिए हम पूर्णतः उत्तरदायी हैं। तथा पुस्तक हेतु सुध ाारात्मक उपयोगी एवं सुझावों का सदैव स्वागत है। प्रतीक्षारत इन्हें दूर करने के लिए सुझाव एवं आलोचना प्रस्तुत करेंगे उनका मैं हृदय से आभारी रहूँगा साथ ही उनके द्वारा प्रेषित सुझावों का सदैव स्वागत किया जायेगा।

डॉ. अमरजीत सिंह
निदेशक
ग्राम स्वराज संस्थान, पन्ना

1

विकास : अवधारणा, प्रकृति एवं स्वरूप

आधुनिक युग विकास का युग है। आज प्रत्येक राष्ट्र विकास के लिए प्रयत्नशील है। जर्मनी एवं सोवियत संघ जैसे राष्ट्र नियोजित कार्यक्रमों के माध्यम से जब से विकास के पथ पर आगे आये हैं, तभी से विश्व के हर एक राष्ट्र में विकास की ललक जाग्रत हुई है। आज विकास की गति अत्यन्त तीव्र हो चुकी है। विश्व विगत 2000 वर्षों में जितना विकसित हुआ उससे अधिक पिछले 200 वर्षों में विकसित हो गया है, और पिछले 200 वर्षों में जितनी प्रगति हुई उससे भी अधिक प्रगति विगत् 15 वर्षों में हो चुकी है। इसका एक परिणाम यह भी हुआ है कि विकास पर विगत वर्षों में बड़े पैमाने पर साहित्य की रचना हुई किंतु विकास से सम्बन्धित साहित्य में विकास क्या है, इस पर आम सहमति का अभाव है। इस पर अनेकों विरोधाभाषी विश्लेषण के कारण ही विकास शब्द के तात्पर्य के सम्बन्ध में पर्याप्त भ्रम की स्थिति आज भी बनी हुई है। अंधों के हाथी के सदृश प्रत्येक विद्वान इसके एक अंग को पकड़कर उसे ही विकास बताने का प्रयास कर रहा है। इस अध्याय में विकास की संकल्पना को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

विकास एक बहुआयामी संकल्पना है इसको समग्रता से ज्ञात करने के उद्‌देश्य से विकास, विकास के घटक या सूचक एवं विकास के सिद्वान्तों को भी स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। विकास की बातें यद्यपि गाँवों में, जिले में, प्रांतों की राजधानियों में एवं देश की राजधानी दिल्ली में भी होती हैं। तथापि विकास को परिभाषित करना कठिन है। क्या विकास के तात्पर्य समझना इतना कठिन है कि हम इसकी एक सर्वमान्य परिभाषा नहीं दे सकते ?

इसका प्रमुख कारण यह है कि विकास का तात्पर्य हर व्यक्ति अपनी परिस्थितियों के अनुसार लगाता है, क्योंकि विकास एक सापेक्ष घटना है जो देश काल एवं परिस्थितियों के अनुसार अलग-अलग अर्थों में प्रयुक्त की जाने के कारण अलग-अलग रूपों में प्राप्त होती है। अतः इसकी एक निश्चित परिभाषा देना कठिन है, जैसे–एक बेरोजगार रोजगार की प्राप्ति को ही अपना विकास समझता है। कृषक कृषि उन्नति हेतु साधनों की उपलब्धता को ही विकास मानता है। जहाँ पानी नहीं है, वहाँ पर पानी का होना तथा जहाँ स्कूल नहीं है, वहाँ शिक्षा की व्यवस्था होना ही विकास का द्योतक है। कुछ लोग

देश में उद्योग धन्धों की स्थापना को ही विकास का पर्याय मानते हैं। वहीं पर दलित एवं शोषित वर्ग सामाजिक न्याय पर आधारित समाज की स्थापना ही विकास है। पाश्चात्य देशों में जहाँ उन्मुक्तता को विकास का पर्याय माना जाता है, वहीं पर भारत में मूल्यों पर आधारित नैतिक प्रगति विकास का प्रतीक है। अतः यह प्रश्न स्वाभाविक हो जाता है कि वास्तव में विकास है क्या ?

विकास क्या है ?

विकास से मिलते-जुलते अनेक शब्द हैं यथा—विकास, समृद्धि, परिवर्तन, उत्थान, देखभाल, कल्याण एवं उन्नति इत्यादि। सामान्य बोलचाल की भाषा में प्रायः ये सभी शब्द एक-दूसरे के समानान्तर अर्थों में प्रयोग किये जाते हैं। अनेक विद्वानों ने इन शब्दों में भेद करने का प्रयास किया है।

शाब्दिक दृष्टि से विकास अंग्रेजी के Development शब्द का हिन्दी रूपांतर है। Development शब्द De + velop दो शब्दों से मिलकर बना है, जो Envelop अर्थात् ढके होने का विलोमार्थी है, जिसका तात्पर्य है प्रकट होना या प्रकट करना अर्थात् सुप्त क्षमताओं या ढकी हुई प्रतिभाओं को प्रकट कर देने की प्रक्रिया को विकास कहा जाता है। विकास एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है जिसके कारण परिवर्तन होता है; परिवर्तन प्रायः दो प्रकार का होता है—

1. सकारात्मक परिवर्तन (Possitive Change)
2. नकारात्मक परिवर्तन (Negative Change)

सकारात्मक परिवर्तन ही विकास (Development) है एवं नकारात्मक परिवर्तन अवनति (Regress) है। विकास का सीधा अर्थ है आगे बढ़ना, बेहतर होना या अच्छा होना। अतः हम कह सकते हैं कि विकास एक लम्बी अवधि तक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। विकास के माध्यम से हम समस्त सामाजिक परिवर्तनों को एक दिशा में ले जाना चाहते हैं। यही कारण है कि विकास एक वांछित तत्व है। यद्यपि बहुत से ऐसे सामाजिक परिवर्तन होते हैं, जो आवांछित होते हैं तथा जिनका समाज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसको रोकने के लिए ही आज हम विकास एवं नियोजन की प्रक्रिया अपनाते हैं जिससे कि कम समय में अधिक से अधिक विकास कर सकें। उदाहरण के लिए इस जगत में मानव के प्रादुर्भाव के समय से ही आज तक उसकी स्थिति में निरन्तर सुधार होता रहा है एवं होता रहेगा। इस सुधार की प्रक्रिया को संक्षिप्त एवं योजनाबद्ध कर सके इसके लिए हमने योग बनाया तथा 5000 वर्षों में जो मानव विकास होता है, उसे हम योग के माध्यम से पाँच या दस वर्षों के भीतर प्राप्त कर लेते हैं। इस प्रकार जो सामाजिक परिवर्तन सैकड़ों वर्षों में होता है, उसे हम नियोजित करके थोड़े समय में ही अपने उद्देश्यों के अनुरूप प्राप्त कर लेते हैं। इसे ही विकास की प्रक्रिया कहा जाता है।

विकास एक सापेक्ष संकल्पना है। कुछ देशों को अन्य देशों की तुलना में अधिक विकसित कहा जाता है। अधिक विकसित देशों की तुलना में अल्पविकसित देशों की प्रायः चर्चा की जाती है। इसी प्रकार हमारे देश में कुछ राज्यों को अन्य राज्यों की अपेक्षा अधिक विकसित कहा जाता है। इस प्रकार स्पष्टतः विकास में सापेक्ष तुलना शामिल है। विकास से तात्पर्य जीवन के भौतिक स्तर में समग्र रचनात्मक परिवर्तन से है, किन्तु कुछ अन्य विद्वानों ने इस रचनात्मक परिवर्तन में आर्थिक के साथ ही साथ सामाजिक पहलू को भी समाविष्ट कर लिया है तथा विकास के लिए आर्थिक समृद्धि के साथ ही साथ लाभं के न्यायोचित वितरण एवं न्याययुक्त समृद्धि का होना भी आवश्यक माना है। विकास की अनेक विद्वानों द्वारा प्रदत्त परिभाषाओं को यहाँ पर प्रस्तुत किया जा रहा है–

1. **एण्ड्यूसरीड**–"विकास का तात्पर्य जीवन के उन प्रतिमानों से है, जिनसे सम्पत्ति में वृद्धि होती है।"
2. **विलियम्सन**–"विकास से उन प्रक्रियाओं का बोध होता है जिनके द्वारा किसी देश या प्रदेश के नागरिक उपलब्ध साधनों का प्रयोग प्रति व्यक्ति वस्तुओं के उत्पादन में उत्तरोत्तर वृद्धि के लिये करते हैं।"
3. **संयुक्त राष्ट्र संघ की रिपोर्ट के अनुसार**–"विकास मनुष्य की केवल भौतिक आवश्यकताओं से ही नहीं वरन् उसकी सामाजिक दशाओं से भी सम्बन्ध रखता है। विकास का तात्पर्य आर्थिक समृद्धि से नहीं है वरन् इसमें सामाजिक, सांस्कृतिक, संस्थागत तथा आर्थिक परिवर्तन भी सम्मिलित है।"
4. **एस. के. चटर्जी**–"विकास प्रगतिशील, राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति की दिशा में नये एवं निरन्तर होने वाले परिवर्तनों का सामना करने की व्यवस्था की क्षमता हेतु सतत् वृद्धि की प्रक्रिया है।"
5. **गरहार्ड क्रोम और थियोडोर जिंजर**–"विकास सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों के साथ-साथ आर्थिक समृद्धि भी चाहता है। इसमें गुणात्मक परिवर्तनों के साथ ही संख्यात्मक वृद्धि का होना भी आवश्यक है।"
6. **पनासियन के अनुसार**–"विकास संकुचित अर्थ में सामाजिक परिवर्तन है। यह वृद्धि से सम्बन्धित है, जो पहले से ही किसी वस्तु में गुप्त रूप से विद्यमान ऊर्जा अथवा क्षमता को प्रकट करने की प्रक्रिया से जुड़ी हुई है।"
7. **नोडेल** ने विकास से तात्पर्य केवल ऐसे परिवर्तनों से ही नहीं माना है जिससे कोई अप्रकट या छिपी चीज प्रकाश में आ जाये अपितु इसका सम्बन्ध उन्होंने सम्भावित ऐसे परिवर्तनों से भी लगाया है जिसकी व्याख्या वैज्ञानिक दृष्टिकोण से की जानी चाहिए। वे मानते हैं कि विकास की प्रक्रिया का अन्तिम रूप ही किसी समाज को प्रगति की अवस्था तक पहुँचाता है।
8. **कार्ल मार्क्स** ने *"ए कान्स्टीट्यूशन टू द क्रिटिक आफ पोलिटिकल इकोनामी'* में लिखा है कि एक निश्चित अवस्था में उत्पादन की भौतिक शक्तियाँ तथा

उत्पादन के वर्तमान सम्बन्ध प्रभावित होते हैं।" विकास की निश्चित अवस्था से उनका तात्पर्य आर्थिक पहलू में चरम विकास से था।

9. **टालकॉट पार्सन्स**—"विकास वे परिवर्तन हैं जो औद्योगिकवाद के कारण राजनीतिक व सामाजिक संस्थाओं पर लक्षित होते हैं। इनके अनुसार आर्थिक कारक ही औद्योगिकवाद को प्रभावित करते हैं।
10. **बोटोमोर**—"विकास से मेरा तात्पर्य किसी भी प्रकार की प्राप्ति से है।"
11. **गुटविच तथा भूरे** ने *"ट्वेण्टियथ सेन्चुरी सोसियोलॉजी"* में पी. ए. सोरोकिन के लेख *"सोसियो-कल्चरल डायनामिक्स एण्ड इवोल्यूशनिज्म"* में विकासवादी सिद्धान्तों का एक आलोचनात्मक विवरण प्रस्तुत किया। इसी प्रकार **जिन्सवर्ग** ने *"द कान्सेप्ट आफ इवोल्यूशन सोसियोलॉजी में,* **बोगार्डन** चाइल्ड ने अपनी कृति *"मैन मेक्स हिमसेल्फ"* में विकास की अवधारणा को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। इसी प्रकार हासलिट ने *"सोसियोलॉजिकल ऐसपेक्ट आफ इकोनामिक ग्रोथ"* में तथा **गुन्नार मिरडल** ने *'एशियन ड्रामा'* में विकास से सम्बन्धित तत्वों का उल्लेख किया है।

क्या यहीं विकास है ?

आज के विश्व की एक बहुत बड़ी विसंगति यह है कि विज्ञान की तमाम तरक्की के बावजूद लाखों की तादाद में लोग भूख एवं कुपोषण से बिलख-बिलख कर मरने पर मजबूर हैं। यह स्थिति विश्व के उस हिस्से की है जिनका पिछली चार-पाँच शताब्दियों में भयानक शोषण व दोहन हुआ है। वे देश आज तक उस शोषण की प्रक्रिया से उबर नहीं पाये हैं।

विज्ञान की प्रगति ने इस शताब्दी में हमें एक सुनहरा अवसर उपलब्ध करवाया कि हम धरती से भूख और अभाव को मिटा सकें; किन्तु हमने न केवल उस अवसर को खो दिया अपितु ऐसे रास्ते पर चलने लगे, जिससे हमारे अस्तित्व मात्र को बचाये रखने के लिए अनेक नये खतरे पैदा हो गये।

संयुक्त राष्ट्र संघ के यू. एन. डी. पी. रिपोर्ट 10 जुलाई 2001 के अनुसार –

1. आज भी विश्व के एक प्रतिशत अमीरों की आय दुनिया के 57 प्रतिशत गरीब लोगों की कुल आय से ज्यादा है।
2. अमेरिका के सर्वाधिक 10 प्रतिशत अमीरों, जिनकी कुल संख्या करीब 250 करोड़ होगी, की आय विश्व के सर्वाधिक निर्धन 43 प्रतिशत आबादी अर्थात् 200 करोड़ लोगों की कुल आय से भी अधिक है।
3. विश्व की करीब एक चौथाई आबादी आज भी मात्र 1500 रूपये मासिक आमदनी में अपना गुजर-बसर करने को अभिशप्त है।

4. दुनिया के 25 प्रतिशत अमीरों का विश्व के कुल 75 प्रतिशत आय पर कब्जा है। असमानता का आलम यह है कि विश्व के सर्वाधिक अमीर जितना कमाते हैं उसका डेढ़ प्रतिशत अंश ही 10 प्रतिशत गरीब कमा पाते हैं।
5. दुनिया भर में अभी भी ऐसे लोगों की संख्या करीब 1 अरब है जिन्हें पीने का बेहतर पानी नहीं मिल पाता है।
6. दुनिया की एक तिहाई से ज्यादा आबादी स्वास्थ्य के लिए जरूरी सफाई प्रबन्ध से अब भी वंचित है।
7. विश्व में प्रत्येक वर्ष करीब 22 लाख लोग कल-कारखानों, कार्यालयों व घरों के भीतर मौजूद वायु प्रदूषण के कारण मौत के मुँह में चले जाते हैं।
8. विश्व के साढ़े तीन करोड़ लोग जानलेवा रोग एड्स के शिकार हैं।
9. विभिन्न देशों के करीब 86 करोड़ वयस्कों को आज तक साक्षर नहीं बनाया जा सका है। इनमें से वयस्क महिला निरक्षरों की संख्या 54 करोड से भी ज्यादा है।
10. दुनिया भर के 33 करोड़ से ज्यादा बच्चे आज भी प्राथमिक स्कूलों का मुँह नहीं देख पाते हैं।
11. 5 वर्ष से कम उम्र के 16 करोड़ से ज्यादा शिशु प्रति वर्ष कम वजन एवं कुपोषण का शिकार होते हैं और एक करोड़ से ज्यादा बच्चे मामूली सुविधाओं से ज्यादा वंचित रहने के कारण मर जाते हैं।
12. दुनिया के 20 ऐसे देश हैं जिनका मानव विकास सूचकांक पिछले वर्षों की तुलना में ऊपर जाने के बजाय नीचे आ गया है। इसमें जाम्बिया, रोमानिया, रूस, जिम्बाब्वे, दक्षिण अफ्रीका, लिथुवानिया, बुलगारिया, केन्या, और नामीबिया इत्यादि जैसे देश भी शामिल हैं।

पूर्व प्रस्तुत परिभाषाओं एवं उपरोक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि वर्तमान में विकास का विचार न केवल महत्वपूर्ण स्थान रखता है, अपितु अधिकांश विद्वानों द्वारा किये जाने वाले चिंतन का एक केन्द्र बिन्दु भी है। काफी समय तक यह समझा जाता रहा है कि विकास मुख्य रूप से आर्थिक संवृद्धि पर निर्भर करता है तथा आर्थिक संवृद्धि हो जाने पर विकास स्वतः ही हो जाता है, किन्तु यू. एन. डी. पी. द्वारा प्रस्तुत उपरोक्त वास्तविक स्थितियों के विश्लेषण के पश्चात् अब इस दृष्टिकोण में काफी परिवर्तन आ चुका है तथा विकास के लिए निम्नांकित बातों पर भी ध्यान दिया जाता है–

1. क्या व्यक्तिगत एवं राष्ट्रीय आर्थिक संवृद्धि साथ-साथ हो रही है ?
2. क्या वृद्धि से प्राप्त लाभों का न्याययुक्त वितरण हो रहा है ?
3. संवृद्धि कैसे एवं किस लागत पर हो रही है। कहीं इससे हमारा भविष्य तो प्रभावित नहीं हो रहा है।
4. क्या रहन–सहन की स्थितियों में गुणात्मक सुधार हो रहा है।

विभिन्न देशों की भिन्न-भिन्न प्राथमिकताएँ होने के कारण विकास का ऐसा कोई अकेला मार्ग नहीं हो सकता है जिस पर सभी चल सकें। यह देश काल परिस्थितियों एवं प्राथमिकताओं के आधार पर निर्धारित होता रहता है। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि विकास वह परिवर्तन है जिसके द्वारा समाज को वांछित दिशा में सीमित समय के अन्दर ले जाने का प्रयास किया जाता है। यही कारण है कि विकास के अन्तर्गत परिवर्तन की निरन्तरता के साथ–साथ एक दिशा का भी बोध होता है। यह दिशा यद्यपि पूर्व निश्चित नहीं होती है फिर भी इसका झुकाव प्रगतिमय होता है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि विकास सामाजिक प्रगति का एक साधन है; इसके द्वारा उन तत्वों को प्रकाश में लाया जाता है जिसकी समाज को आवश्यकता है। विकास के अन्तर्गत परिवर्तन की निरन्तरता के साथ-साथ एक दिशा का भी बोध होना आवश्यक है। यह दिशा यद्यपि पूर्व निश्चित नहीं होती है फिर भी इसका झुकाव प्रगतिमय होता है। अतः हम कह सकते हैं कि विकास सामाजिक प्रगति का एक साधन है।

यही कारण है कि विकास के नाम पर जहाँ एक ओर विश्व स्तर पर बढ़ती आय व उत्पादकता के आंकड़ों के रूप में तरह-तरह के नये उत्पादों की चकाचौंध एवं आधुनिकतम मशीनों के उपयोग से हुए कमाल के रूप में देखा जा रहा है । वहीं दूसरी ओर इस प्रकार की अनेक आर्थिक विसंगतियाँ स्पष्ट होती जा रही हैं, जिनमें से कुछ का उल्लेख करना उचित होगा–

1. विश्व की जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा आज भी भयंकर अभाव, गरीबी एवं भुखमरी के साये में रहने को मजबूर है।
2. आर्थिक समृद्धि प्राप्त लोग भी अनेक समस्याओं से ग्रस्त हैं; जैसे–भोगवादी लिप्सा से उत्पन्न बेचैनी, बिलासिता से जुड़ी स्वास्थ्य की समस्याएँ, तनाव, मानवीय सम्बन्धों में रिक्तता या टूटन, नशाखोरी, तलाक, यौन अपराध एवं अन्य विविध अपराधों के आंकडों में वृद्धि के रूप में दिखाई पड़ रही हैं।
3. विकसित देश अपनी समृद्धि प्राप्त करने या बनाए रखने के लिए अविकसित देशों के संसाधनों को बेहिचक छीनने की या हड़पने की कुत्सित गतिविधि में संलग्न हैं।
4. वर्तमान में विकास के नाम पर संचालित गतिविधियाँ भावी पीढ़ी या भविष्य की आवश्यकताओं को ध्यान में न रखकर अधिकतम उपभोग की प्रवृति पर आधारित हैं। इसके कारण प्राकृतिक संतुलन बिगड़ गया है। प्राकृतिक आपदाओं का संकट एवं दीर्घकालीन विनाशकारी परिणाम दृष्टिगत होने लगा है।

विकास से जुड़ी इन विसंगतियों को देखते हुए आज यह बहुत जरूरी हो गया है कि विकास पर गहन विचार करके सार्थक विकास के लिए परिभाषा तलाशने का प्रयास

किया जाये। अभी तक प्रायः यह माना जाता रहा है कि जिस देश में राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय तेजी से बढ़ रही है, वहीं देश विकास पथ पर अग्रसारित है; किन्तु निम्नांकित सवालों का जवाब भी देना आवश्यक है–

1. क्या राष्ट्रीय आय के वितरण में असमानता है ?
2. क्या राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि अपने ही देश के एक वर्ग अथवा दूसरे देशों का शोषण करके या उन्हें अभाव में रखकर प्राप्त किया जा रहा है।
3. क्या आबादी के आधे हिस्सा के रूप में रह रही महिलाओं के साथ लिंग के आधार पर भेदभाव अन्याय या दमन हो रहा है ?
4. क्या राष्ट्रीय आय प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि के लिए नैतिकता या स्वास्थ्य की दृष्टि से खतरनाक वस्तुओं के उत्पादन को आधार बनाया जा रहा है अथवा जीवनदायी वस्तुओं को ?
5. क्या मनुष्यों को आराम व सुख सुविधाएँ जुटाने के नाम पर पशु, पक्षियों, जीव जन्तुओं एवं वनस्पतियों पर यातना एवं अत्याचार किया जा रहा है अथवा उनके सह–अस्तित्व को बनाए रखा जा रहा है।
6. क्या समाज समृद्धि के नाम पर विघटन एवं अंतहीन तनावों को झेल रहा है ?
7. किसी सामाजिक आर्थिक व्यवस्था में कितने प्रतिशत लोग ऐसे हैं जो अपनी रुचि स्वास्थ्य और नैतिक मूल्यों के अनुकूल कार्यों में लगे हुए हैं और कितने प्रतिशत लोग ऐसे हैं जो बस किसी तरह जीवन की गाड़ी खीचीं रहे हैं।

इससे यह स्पष्ट है कि राष्ट्रीय आय या प्रति व्यक्ति आय से विकास की सही पहचान नहीं हो सकती ! यद्यपि विज्ञान की प्रगति ने इस शताब्दी में हमें एक सुनहरा अवसर उपलब्ध करवाया जिससे कि हम धरती से भूख और अभाव को मिटा सकें। हमने न केवल वह अवसर खो दिया है, अपितु विकास के नाम पर हम ऐसे रास्ते पर चल रहे हैं, जिससे अस्तित्व के लिए नए खतरे उत्पन्न हो गए हैं। अतः यह विचारणीय है कि हम कहीं विकास के नाम पर विनाश की ओर अग्रसरित तो नहीं हैं।

विकास के कारक

विकास की प्रक्रिया अनेक कारकों अथवा परिस्थितियों का परिणाम होती है। विकास की प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले इन्ही कारकों को विकास का निर्धारक कहा जाता है इन अनेक कारकों में कुछ कारक प्रधान होते हैं तथा शेष गौण कारक होते हैं। सुविधा के लिए इन्हें निम्नांकित दो भागों में विभाजित किया जा सकता है–

(1) आर्थिक कारक (2) गैर आर्थिक कारक।

(1) आर्थिक कारक

विकास को प्रेरणा देने वाले ऐसे कारक जो कि राष्ट्र की अर्थ व्यवस्था को गति प्रदान करते हैं, आर्थिक कारक कहे जाते हैं। आर्थिक कारकों का संक्षिप्त विवरण निम्नांकित है–

1. **तकनीकी प्रगति**–किसी भी देश के विकास में उस देश का तकनीकी ज्ञान महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। तकनीकी ज्ञान के माध्यम से अर्थव्यवस्था की संरचना परिवर्तित हो जाती है। इसके कारण यदि प्राकृतिक संसाधनों में कमी भी हो तो विकास की गति बाधित नहीं होती है; जैसा–कि **एच. डब्ल्यू. सिंगर** का कथन है कि "यह निश्चित रूप से सिद्ध हो गया है कि दीर्घकालीन उत्पादन वृद्धि का बहुत थोड़ा अंश भौतिक साधनों; जैसे अधिक श्रम; अधिक भौतिक पूँजी और अधिक प्राकृतिक साधनों के कारण उत्पन्न होता है। उत्पादन वृद्धि का बहुत बड़ा भाग अभौतिक कारणों; जैसे तकनीकी प्रगति और भौतिक साधनों की उत्पादकता में वृद्धि के कारण होता है।

भूमि, श्रम, पूँजी, संगठन और साहस के अलावा तकनीकी उत्पादन वह छठवाँ साधन बन गया है, जिस पर प्रत्येक अर्थव्यवस्था में प्राकृतिक संसाधनों का दोहन आधारित है।

कुजनेट्स के अनुसार वैज्ञानिक प्रगति के निम्नांकित पाँच तत्व हैं–

1. वैज्ञानिक कोष अथवा तकनीकी ज्ञान में वृद्धि
2. नवीन आविष्कार
3. नव प्रवर्तन
4. सुधार
5. सुधारों के साथ नव प्रवर्तनों का प्रसार

इनमें से किसी भी एक अथवा समस्त की क्रियाशीलता के परिणामस्वरूप आर्थिक विकास की प्रक्रिया को गति प्राप्त हो जाती है।

2. **पूँजी निर्माण**--आर्थिक विकास के निर्धारक कारकों में पूँजी निर्माण सबसे महत्वपूर्ण कारक है। किसी विशेष समयावधि में पूँजी पदार्थो के स्टाक में वृद्धि उस समयावधि के पूँजी निर्माण को दिखाती है। **आर. नर्क्स** ने इस तथ्य को निम्नालिखित प्रकार से प्रस्तुत किया है, "पूँजी निर्माण का यह अर्थ है कि समाज अपनी सम्पूर्ण आर्थिक क्रियाओं को तात्कालिक उपभोग सम्बन्धी आवश्यकताओं तथा इच्छाओं में न लगाकर इसके एक भाग का पूँजीगत वस्तुओं व पदार्थो, उपकरणों व औजारों, मशीनों व परिवहन सुविधाओं, प्लाण्ट तथा यंत्रों आदि वास्तविक पूँजी के विभिन्न रूपों में लगाता है।"

उपरोक्त परिभाषा से यह स्पष्ट है कि आर्थिक क्रियाओं से प्राप्त प्रतिफल का जो भाग अपने उपभोग पर व्यय न करके मशीनों, औजारों, उपकरणों आदि के ऊपर व्यय किया जाता है तथा इसमें से पूँजी क्षय और आकस्मिक हानि होने का व्यय घटा दिया

जाता है, तब किसी अर्थव्यवस्था में शुद्ध पूँजी निर्माण की मात्रा प्राप्त होती हैं। अल्प विकसित देशों में गरीबी का एक प्रमुख कारण वहाँ पर पूँजी का अभाव भी है। पूँजीगत पदार्थों की वृद्धि द्वारा उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है। देश में उपलब्ध साधनों का समुचित प्रयोग किया जा सकता है। पूँजी निर्माण के माध्यम से ही उत्पादन, आय, रोजगार तथा तकनीकी उपादानों में विस्तार करके आर्थिक विकास को महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित किया जा सकता है। इसी प्रकार तकनीकी ज्ञान, मानवीय बुद्धि तथा योग्यता, विनियोग क्षमता तथा श्रमिकों की कार्य–कुशलता व कार्यक्षमता आदि भी पूँजी पदार्थों की वृद्धि से प्रभावित होती है। पूँजी निर्माण में चूँकि वर्तमान उपभोग में कटौती करके बचत व विनियोग वृद्धि की संभावनाएँ हैं। अतः अल्प–विकसित देशों के आर्थिक विकास में इसका विशेष महत्व है। पूँजी के विनियोग द्वारा अर्थव्यवस्था हेतु उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है। शिक्षा तथा स्वास्थ्य के क्षेत्र में किया गया विनियोग श्रम कार्यक्षमता में वृद्धि करना है। श्रमिकों की कार्य–क्षमता तथा अर्थ-व्यवस्था की उत्पादन क्षमता में वृद्धि के द्वारा राष्ट्रीय उत्पादन तथा राष्ट्रीय आय में वृद्वि होती है। इस प्रकार मानवीय पूँजी में किया गया विनियोग अर्थ–व्यवस्था के आर्थिक विकास को महत्वपूर्ण ढ़ंग से प्रभावित करता है।

3. जनसंख्या–किसी भी अर्थव्यवस्था की सम्पत्ति इसके भूमि, जल, खनिज व बहुमूल्य धातुओं के भंडारों से नहीं बनती है, बल्कि उस देश के चरित्रवान, परिश्रमी और लगनशील व्यक्ति ही वास्तविक संपत्ति होते हैं। जनसंख्या की वृद्धि अर्थ–व्यवस्था को दो रूपों में प्रभावित करती है। कुछ विशेष दशाओं में जनसंख्या की वृद्धि अधिक विकास में सहयोगी होती है। साथ ही साथ कुछ विभिन्न दशाओं में यह आर्थिक विकास में अवरोध उत्पन्न करती है। जहाँ तक समग्र आय और उत्पादन की मात्रा को बढ़ाने का प्रश्न है तो जनसंख्या वृद्धि इसमें एक सहायक कारक के रूप मे कार्य करती है, किन्तु प्रति व्यक्ति उत्पादन या आय की दृष्टि से देखा जाय तो जनसंख्या की प्रत्येक वृद्धि नकारात्मक प्रभाव डालती है। यदि जनसंख्या की वृद्धि दर राष्ट्रीय आय की वृद्धि के बराबर है या उससे अधिक है तो आर्थिक विकास के लिए हानिकारक बन जाती है। अल्प विकसित देशों में बढ़ती हुई जनसंख्या वहाँ के आर्थिक विकास में कई रूपों में समस्या बनकर बाधक सिद्ध हुई है तथा अनेक सामाजिक एवं राजनीतिक समस्या पैदा कर रही है। फिर भी आर्थिक विकास में मानवीय साधनों का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि मनुष्य ही सारी आर्थिक क्रियाओं का प्रधान चालक व नियंत्रक है। इसी आधार पर **गिल** का कथन है कि "आर्थिक विकास एक नियांत्रिक क्रिया नहीं है।" अन्तिम रूप से यह एक मानवीय उपक्रम है एवं अन्य मानवीय उपक्रमों के समान इसका परिणाम अन्तिम रूप में इसको संचालित करने वाले मनुष्यों की कुशलता, गुण व प्रवृत्ति पर निर्भर करता है। यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि किसी अर्थ–व्यवस्था की वास्तविक सम्पत्ति इसके भूमि या जल या खनिज अथवा बहुमूल्य धातुओं के भण्डारों में नहीं बल्कि उस देश

के चरित्रवान परिश्रमी और लगनशील व्यक्तियों में निहित होती है। इस प्रकार यहाँ पर मानवीय साधनों से तात्पर्य मानवीय ज्ञान, कुशलता, योग्यता तथा साहसोद्यम कुशलता से है। आर्थिक विकास को सही गति तथा दिशा प्रदान करने में भी मानवीय साधन महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके अभाव में यह सम्भव है कि आर्थिक विकास का प्रयास अर्थ–व्यवस्था की आवश्यक समस्याओं के अनुकूल न हो।

4. प्राकृतिक संसाधन—किसी भी देश का आर्थिक विकास वहाँ पर उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर है। सामान्यतः जल, जंगल, जमीन, खनिज-पदार्थ, समुद्र, पर्वत इत्यादि को प्राकृतिक संसाधनों की कोटि में रखा जाता है। सामान्यतः कम गुणवत्ता वाले संसाधनों की अपेक्षा अधिक गुणवत्ता वाले साधनों का लोग अधिक प्रयोग करते हैं। ऐसे देश जो प्राकृतिक साधनों की दृष्टि से धनी हैं और जहाँ पर महत्वपूर्ण प्राकृतिक साधनों का प्रचुर भण्डार है, वहाँ पर आर्थिक विकास की भारी संभावनाएँ पाई जाती हैं।

प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता की अपेक्षा उनका उपयुक्त उपयोग महत्वपूर्ण हैं विश्व के अनेक देशों में पर्याप्त प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता के बावजूद वहाँ पर कोई भी महत्वपूर्ण विकास नहीं हुआ है, जबकिं कुछ देशों में कम प्राकृतिक संसाधनों के बावजूद अप्रत्याशित आर्थिक विकास हुआ है।

5. कृषि को आधिक्य सृजक क्षेत्र बनाना—विकासशील अर्थव्यवस्था में उत्पादन रोजगार और विपणन योग्य अतिरिक्त सृजन करने की दृष्टि से कृषि क्षेत्र की भूमिका महत्वपूर्ण होती है परन्तु इन देशों में कृषि मात्र जीवन निर्वाह का व्यवसाय बनी रहती है। कृषि क्षेत्र को अपेक्षाकृत कम पूँजी एवं तकनीकी ज्ञान से विकसित किया जा सकता है। कृषि क्षेत्र से प्राप्त संसाधन, खाद्यान्न, उत्पादन, विपणन योग्य अतिरेक आर्थिक विकास को गति प्रदान करता है। अल्प विकसित देशों में जनसंख्या वृद्धि दर 15% से 3% तक है। अतः इन देशों में खाद्य पदार्थों के उत्पादन में भी 15% से 3% तक वृद्धि की आवश्यकता है। कृषि कार्य द्वारा सृजन किया हुआ विपणन अतिरेक की कमी से एशिया व सुदूर पूर्व के पिछड़े देशों में अपर्याप्त पोषण स्तर पाया गया है और प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि तथा वर्तमान जनसंख्या की वृद्धि को देखते हुए विकासशील अर्थ–व्यवस्था में खाद्य पदार्थों की माँग में 37 प्रतिशत वृद्धि दर की संभावना है। अतः बढ़ती हुई जनसंख्या की खाद्य आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ ही साथ कृषि क्षेत्र को प्रारम्भिक अवस्था में पूँजी का दाता होना भी आवश्यक है, क्योंकि वह सबसे बड़ा आर्थिक क्षेत्र है।

6. विदेशी व्यापार एवं सहायता—पूंजी निर्माण में विदेशी व्यापार की महत्वर्पूण भूमिका है। उपयोग तथा अन्य वस्तुओं के आयात पर नियंत्रण किया जा सकता हैं और इससे आन्तरिक बचतें बढ़ायी जा सकती हैं। प्रदर्शनकारी विलासितायुक्त वस्तुओं के आयात को नियंत्रित करके बचत की प्रवृत्ति बढ़ाई जा सकती है। इसी प्रकार उपभोग प्रवृत्ति पर पड़ने वाले हानिकारक प्रभावों को भी रोक कर पूँजी पदार्थों एवं उपकरणों

इत्यादि की व्यवस्था करके निर्यात को बढ़ाया जा सकता है, वह भी पूँजी निर्माण प्रक्रिया को गति प्रदान करेगा ।

इसी प्रकार विकासशील देशों में जहाँ पर घरेलू बचतें कम हैं। विदेशी सहायता महत्वपूर्ण हो सकती हैं। इससे बडा उत्पादन एवं अन्य विकासात्मक कार्यों का संचालन किया जा सकता है। विदेशी सहायता अनुदान, ज्ञान, सुझाव व अनुभव इत्यादि के रूप में भी होता है।

प्रो. ए. के. गुप्ता के अनुसार बाहरी सहायता दो उद्देश्यों की पूर्ति करती है। एक ओर यह अर्थव्यवस्था को अतिरिक्त बचत भार से मुक्त करती है और दूसरी ओर यह अर्थव्यवस्था को विदेशी विनिमय प्राप्त कराती है जिसकी सहायता से पूँजीगत वस्तुओं और तकनीकी ज्ञान का तीव्र आर्थिक विकास के लिए आयात किया जा सकता है। यद्यपि विदेशी सहायता का असीमित उपयोग भी आत्म-निर्भरता के लिए खतरनाक होता है, किन्तु प्रारम्भिक पूँजी निर्माण के लिए प्रायः सभी विकासशील देश इसका उपयोग करते हैं।

7. अदृश्य हुयी बेरोजगारी तथा पूँजी निर्माण–छिपी या अदृश्य हुई बेरोजगारी विकासशील देशों की सबसे प्रमुख विशेषता है, क्योंकि इन देशों में जनाधिक्य के कारण कृषि एवं कृषि पर आधारित उद्योगों में लगे हुए लोगों की संख्या उपलब्ध कार्य अवसरों की तुलना में अधिक है। प्रथम दृष्ट्या ये सभी रोजगार में लगे हुए दीखते हैं, किन्तु वे बेरोजगार होते हैं। चूँकि यह बेरोजगारी स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं पड़ती है; अतः इसे छिपी हुई बेरोजगारी कहते हैं। छिपी हुई बेरोजगारी शब्द को सामान्यतः उस स्थिति को दिखाने के लिए प्रयोग किया जाता है, जहाँ उत्पादन क्रिया में संलग्न विभिन्न कार्यरत इकाइयों को बाहर कर देने पर कुल उत्पादन या तो यथावत अपरिवर्तित रहेगा या यह बढ़ सकता है। इस प्रकार कुछ कार्यरत इकाइयों की सीमान्त उत्पादकता शून्य या लगभग शून्य अथवा ऋणात्मक मात्रा में हो। इस प्रकार अदृश्य बेरोजगारी की प्रमुख विशेषताएँ निम्नांकित हैं–

1. यह बेरोजगारी मुख्यतः कृषि क्षेत्र में पाई जाती है।
2. छिपे हुए बेरोजगार श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता शून्य या नकारात्मक होती है।
3. यह जानना कि कौन से लोग छिपे रूप से बेरोजगार हैं; अत्यन्त कठिन है।
4. छिपी हुई बेरोजगारी, मौसमी बेरोजगारी जो जलवायु एवं फसल प्रणाली आदि संबंधी कारणों से होती है, से भिन्न है।
5. अल्पविकसित देशों की छिपी हुई बेरोजगारी विकसित औद्योगिक देशों की दृश्य बेरोजगारी से भिन्न है।

गैर–आर्थिक कारक

आर्थिक कारकों के साथ ही कुछ गैर–आर्थिक कारक भी होते हैं, जिनका विकास की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण स्थान होता है। आर्थिक विकास के लिए यह आवश्यक है कि

वहाँ के लोगों में विकास के प्रति जागरूकता तथा इच्छा हो तथा उनकी सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक दशायेँ आर्थिक विकास के लिए उपयुक्त हों। **नर्क्स** का कहना है कि – ''आर्थिक विकास मानवीय गुणों, सामाजिक वृत्तियों, राजनीतिक परिस्थितियों एवं ऐतिहासिक संयोग से बहुत निकटता का संबंध रखता है। **प्रो. स्टाव** के अनुसार, आर्थिक विकास को प्रभावित करने वाले प्रमुख गैर–आर्थिक कारक निम्न हैं–

1. आधारभूत विज्ञानों को विकसित करने की प्रवृत्ति,
2. विज्ञान का आर्थिक उद्देश्य में प्रयोग की प्रवृत्ति,
3. नवप्रवर्तन को स्वीकार करने की प्रवृत्ति,
4. भौतिक विकास को प्राप्त करने की प्रवृत्ति,
5. उपभोग की प्रवृत्ति,
6. संतान रखने की प्रवृत्ति।

अर्थ–व्यवस्था की सांस्कृतिक और सामाजिक पृष्ठभूमि अगर अनुकूल है तो विकास कार्यों को गति प्राप्त होगी । इसी प्रकार अर्थ–व्यवस्था परिवर्तन की संभावनाएँ, धनात्मक प्रेरणा, सक्षम और सांस्कृतिक व धार्मिक परिस्थितियाँ भी आर्थिक विकास को प्रभावित करती है, जिनका विवरण निम्नांकित है–

1. सामाजिक तत्व–आर्थिक विकास का लक्ष्य सामाजिक विकास की वृहद् परिकल्पना को पूरा करना है परन्तु आर्थिक विकास में समाज की भी भूमिका निर्णायक होती है । परस्पर एकता की भावना, राष्ट्रीय हित को सर्वोपरि मानना, राष्ट्रीय गौरव की भावना , बचत एवं विनियोग करने की इच्छा, विनियोग क्रिया में निहित जोखिम सहन करने की इच्छा, भौतिक समृद्धि को प्राथमिकता देना आदि सामाजिक तत्व आर्थिक विकास को बढ़ाने में सहायक होते हैं ।

2. राजनीतिक तत्व–वर्तमान युग में सरकारें आर्थिक विकास की प्रमुख अभिकर्ता बन गयी हैं। न केवल समाजवादी देशों में अपितु पूंजीवादी देशों में भी अवस्थापनागत सुविधाओं का विकास सरकार द्वारा किया जा रहा है। सरकारें आर्थिक विकास के लिए संसाधन एकत्र करने और विनियोग की दिशा निर्धारित करने में सहायक होती हैं। इसी प्रकार राजनीतिक परिवेश किसी राष्ट्र के आर्थिक विकास में अत्यन्त सहायक है। **आर्थर लेविस** का विचार है कि सरकार का व्यवहार आर्थिक क्रियाओं को प्रोत्साहित एवं हतोत्साहित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखते हुए उन्होंने यह उल्लेख किया कि कोई भी राष्ट्र योग्य सरकारों के प्रयासों के बिना आर्थिक प्रगति नहीं कर सकता है।

जान मेनार्ड केन्स की पुस्तक *'जनरल थ्योरी'* के अनुसार आर्थिक विकास की प्रक्रिया में सरकार की सहभागिता अत्यन्त तेजी से बढ़ी है।

3. धार्मिक तत्व–धार्मिक तत्व भी वैकल्पिक गतिविधि को प्रभावित करते हैं। एक तरफ जहाँ धर्म कर्तव्य निर्वहन की प्रेरणा प्रदान करता है, वहीं पर इसका आर्थिक विकास

पर भी सकारात्मक प्रभाव होता है। विश्व के विभिन्न देशों में आधारित खोज करने वाले समाज को नयी दिशा देने वाले अधिकांश लोग धार्मिक तत्वों से ओत-प्रोत रहे हैं। धार्मिक तत्वों के प्रभाव का तात्पर्य रूढ़ियों और परम्पराओं में आबद्ध समाज या भाग्यवादी समाज से नहीं है बल्कि दृष्टिकोण को व्यापक बनाने वाले तथा जीवन मूल्यों को प्रश्रय देने वाले समाज के निर्माण से है।

4. खुलापन–विकास का सम्बन्ध पारदर्शिता से भी है। एक अच्छे विकास के लिए जरूरी है कि लोगों के लिए किये जाने वाले काम के बारे में उन्हें पता हो। क्या हो रहा है ? कौन कर रहा है ? क्यों कर रहा है ? किसके लिये कर रहा है ? उनकी इसमें क्या भूमिका होगी ? उन्हें इस बात की जानकारी होना जरूरी है। बनाई गई योजनाएँ, कार्यक्रम क्या हैं। उसके हिसाब-किताब खर्चे के बारे में लोगों को पता हो ताकि लोगों का भरोसा बढ़ सके। लोग सहयोगी बन सकें, जिम्मेदारी ले सकें।

5. जानकारी / नियम, कानून–गाँव में लोगों के साथ मिलकर यह व्यवस्था बने कि ज्यादा लोगों तक सूचनाएँ, जानकारियाँ पहुंचे और उनका इस्तेमाल हो। गैर पढ़े लिखे लोगों को नियम अथवा कानून की जानकारियों के अभाव में अपने कामों के लिये भटकना न पड़े, यह व्यवस्था बने। सूचनाएँ, जानकारियाँ एवं नियम, कानून लोगों को समय पर सरल रूप में उनके द्वारा समझी जा सकने वाली भाषा में मिल सकें।

6. जीवन की गुणवत्ता–सभी लोग स्वस्थ रहें, खुश रहें, इसके लिये जरूरी है कि पीने का सबको पानी मिले। बीमारियाँ न हों। बच्चों और गर्भवती माताओं को समय-समय पर टीके लगते रहें। पोषक आहार मिले, उनकी समय पर जाँच हो और इलाज होता रहे, ताकि उनका जीवन सुरक्षित किया जा सके। बच्चे और बच्चियों की संख्या बराबर हो। बच्चियों को पढ़ाया जाये तथा उन्हें बच्चों के समान ही परिवार एवं समाज में दर्जा प्राप्त हो।

7. निर्णय–हम जिनके विकास के लिए योजना बना रहे हैं उस योजना को तैयार करने में उनकी भागीदारी जरूरी है। बिना उनसे पूछे हम उनकी जरूरतों का सही अन्दाजा कैसे लगा सकते हैं। हम उनके लिये योजनाएँ कार्यक्रम नहीं बनायें वे खुद तय करें उन्हें क्या चाहिये ? उनके लिये क्या ठीक है, क्या नहीं ? किये जाने वाले कार्यों में सामूहिक रजामन्दी से निर्णय हो सकें । आम राय का महत्व बढ़े सबके सामने निर्णय हो। लोगों को बोलने का बराबर मौका मिले। लोग निर्णय लेते समय बिना डर के बोल सकें। गरीबों, दलितों, महिलाओं की बात पहले सुनी जाये, उसे सम्मान दिया जाये और उनकी जरूरतों पर पहले काम हो सके यह माहौल कैसे बने, यह निर्णय कैसे हो ?

8. आत्म निर्भरता–विकास और आत्मनिर्भरता का गहरा सम्बन्ध है अब हमें यह तय करना ही पड़ेगा कि माँगते रहना विकास है या पैरों पर खड़े होने की कोशिश करना। हमेशा बाहर से लोगों के लिये कुछ करने की जरूरत नहीं बनी रहे। कोई तो सीमा हो,

कोई तो लक्ष्मण रेखा हो जिसके बाद बाहर के लोगों की, बाहर के साधनों की जरूरत कम पड़े। बाहरी मदद की आवश्यकता है और होना भी कोई बुरी बात नहीं है लेकिन उस बाहरी मदद की आवश्यकता के साथ-साथ यह कैसे तय हो कि अपनी क्षमताओं, अपने ज्ञान, अपने कौशल को पहचान कर धीरे-धीरे हम अपने संसाधन जुटाना शुरू करें। आत्मनिर्भर गाँव के लिए ग्राम कोष मजबूत बने, हम अपनी जरूरत की कौन-कौन सी चीजे स्वयं बना सकते हैं, बनायें। हम अपने संसाधन बढायें, अपनी जरूरतों को जितनी सीमा तक स्वयं पूरा कर सकते हैं, करें । जो हम अपने संसाधनों से पूरा नहीं कर सकते, बाहरी मदद लें। आत्मनिर्भर होने का एक सीधा अर्थ है जो हम कर सकते हैं, जो हमारे वश में है वो हम करें ताकि बाहरी समाज पर हमारी निर्भरता धीरे-धीरे कम हो सके।

9. न्याय–विकास को न्याय से अलग नहीं किया जा सकता । अगर सही न्याय नहीं किया जा सकता है तो हम कैसे कहेंगे कि हमारा विकास हो गया। विकास का न्याय से गहरा सम्बन्ध है। विकास के लिए जरूरी है कि हमारे सामाजिक वातावरण में सुधार आये। हम जिस समाज में रहें, उस समाज में जाति, धर्म, व्यवसाय, उनके स्तर अमीरी–गरीबी के आधार पर नहीं बने। लोगों के रहने खाने-पीने, सोचने, विचारने और आजीविका के लिए किये जाने वाले विचार में अन्तर हो सकता है। इन अन्तरों के बाद हमारे व्यवहार, हमारे सम्बन्धों में कोई फर्क नहीं दिखना चाहिये। हम सभी तरह के काम करने वालों को सम्मान की नजरों से देखें, उनके साथ अच्छा व्यवहार करें। सबको बराबर अधिकार हो, बराबर सम्मान मिले, सब कोई बात कर सके, बोल सके, निर्णय में सबकी हिस्सेदारी हो। लोगों को किसी का डर या भय न हो। लोगों का शोषण न हो, लोगों पर अत्याचार न हो। महिला-पुरुष, अमीर-गरीब, जाति-धर्म, वर्ग-समूह के नाम पर अन्तर भेदभाव न किया जाता हो। जहाँ सच का साथ देने वाले लोग हों, जो जिसका हक हो उसे मिल सके। विकास विभिन्न आर्थिक और गैर आर्थिक तत्वों से प्रभावित होता है। इनका प्रभाव सम्मिलित रूप से होता है। आर्थिक एवं गैर–आर्थिक तत्व भी परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि आर्थिक विकास की प्रक्रिया किसी एक तत्व का परिणाम न होकर विभिन्न तत्वों के सकारात्मक दिशा में क्रियाशीलता का परिणाम होती है। जब इस प्रक्रिया के कारण कुछ नया करने के लिए सोच-विचार कर निर्णय लिया जाता है तथा लिए गए निर्णयों पर जब चलने के लिए कदम बढ़ाते हैं, जिससे वांछित परिणाम प्राप्त हो सके तो उसे विकासात्मक पहल कहा जायेगा। इस प्रकार विकास का मतलब है, हम समाज में अच्छी चीजों को बढ़ा लें, बना लें, जो अपने स्वयं के और दूसरों के काम आ सकें। ऐसी चीजें जो घर, परिवार, समाज एवं राष्ट्र में सुख एवं समृद्धि ला सकें।

10. जीवन मूल्यों में परिवर्तन–विकास को जीवन मूल्यों से जोड़कर देखा जाना बहुत जरूरी है। जब तक हम अपने मूल्यों, जीवन जीने के तरीकों और उद्देश्य

में परिवर्तन नहीं कर सकेंगें तब तक हम कैसे मानें कि हमारा विकास हो गया। मूल्यों का सम्बन्ध है—जवाबदारी, सम्मान, न्याय, ईमानदारी, जिम्मेदारी, संवेदनशीलता, भाईचारा, एकता, विश्वास, सहयोग, परोपकार, दया, करुणा, समान अवसर ऐसा माहौल बने जहाँ रूढियाँ न हों तथा अन्ध—विश्वास भी न हो । उन मान्यताओं, परम्पराओं को बदलने का अवसर हो जो अब उपयोगी नहीं हैं। और ऐसा आसानी से बिना सामाजिक डर और भय के लोग कर सकें। जीवन मूल्यों में परिवर्तन का अर्थ है हमारी सोच में, हमारे व्यवहार में क्या परिवर्तन आया। हम गरीबों और गरीबी को किस नजर से देखते हैं ? महिलाओं से काम लेने, सम्मान देने, बराबरी का समझने के हमारे विचारों में क्या फर्क आया ? जाति वर्ग के अन्तर को हमने कितना समझा और हमारी उस पर क्या समझ बनी ? हमारा व्यवहार, हमारी सोच इस भावना को कम करने वाली है या नहीं ? हमारी कथनी और करनी में क्या फर्क है ?

11. जीवन जीने के साधन—अगर हम विकास कर रहे हैं तो इसका मतलब यह हुआ कि हमारे जंगल बढ़ने चाहिए। नदी, तालाब, कुएं का पानी स्वच्छ रहे, पर्याप्त रहे। जमीन की उपजाऊ क्षमता बढ़ती रहे। हवा शुद्ध और साफ रहे। जीवन का जो मुख्य आधार है उसे विकास के नाम पर हम नष्ट तो नहीं करते जा रहे हैं । यह देखते रहना जरूरी है। उदाहरण के लिए आदिवासी इलाकों के जंगल ज्यादा ठीक हैं, क्योंकि वे उससे अपनी आवश्यकता की चीजें लेते हैं, जबकि वे जंगल जो दूसरे इलाके में हैं वे खाली हैं, क्योंकि हम वहाँ से अपनी जरूरतें, पूरी करते है साथ ही साथ कानून द्वारा नियत रखवाले भी गैर—कानूनी दोहन करते हैं। जो असली रक्षक हैं जो उस इलाकों से केवल जिन्दा रहने की जरूरतें पूरी कर रहा है, उन्हें बचा रहा है, उसका सम्बन्ध जंगलों से बनाये रखना जरूरी है। इसी प्रकार जीवन जीने के अन्य साधनों पर उन्हीं का होना चाहिए जो उसे बचा सकें।

12. हिस्सेदारी जन—भागीदारी—हमारे विकास के लिए जरूरी है—किये जाने वाले कामों में सबकी हिस्सेदारी हो। लोग मिल-जुलकर काम करें, एक दूसरे के काम आयें, मदद करें। जो भी निर्णय लिये जायें, जो भी काम किये जाये सबकी हिस्सेदारी शामिल हो। हिस्सेदारी का अर्थ है जो काम किया जाना है उसके सोचने-विचारने, उसे अन्तिम रूप देने, उस काम को करने, उसे देखने, पैसे का हिसाब-किताब रखने, उसकी निगरानी करने का, सब काम सबकी मदद से हो। हिस्सेदारी का अर्थ है सामूहिक ताकत को बढ़ाना, सबको साथ लेकर चलना। जो लोग जिस काम के जानकार हैं उन्हें वह काम करने का मौका मिल सके। ज्यादा लोगों को शामिल करके उनके अनुभव ज्ञान का लाभ ले सकें। नियोजन के काम में लोग इस तरह से भागीदारी कर सकते हैं—

- लाभ लेने वाले के रूप में,
- योगदान लेने वाले के रूप में,

- सलाहकार के रूप में,
- निर्णय करने वाले के रूप में,
- बनी हुई चीजों को लम्बे समय तक जीवित रखने के लिए,
- बनाई गई व्यवस्थाओं को अच्छे ढंग से चलाने के लिए।

नयी बनने वाली व्यवस्थाओं, योजनाओं, कार्यकर्ताओं, कार्यक्रमों, कामों को अच्छी तरह चलाने के लिये जरूरी है उससे लोग जुड़े, अपना योगदान दें।

13. स्थायित्व—स्थायित्व का मतलब है जो भी काम करें उसका उपयोग लम्बे समय तक हो सकें। जिस तरीके को चुनें वह लम्बे समय तक चल सके। जितने भी तरह के काम किये जायें उन कामों को नये लोग सीख कर आगे से अपने आप कर सकें। एक बार बनाई गई किसी चीज को लोग अपने ढंग, साधन, जानकारी, ज्ञान, हिस्सेदारी के सहारे चला सकें।

2

विकास के आयाम

विकास की अवधारणा का उद्भव एवं विकास प्रायः पाश्चात्य देशों में हुआ। इन देशों में विकास को प्रारम्भ में आर्थिक विकास के रूप में ही देखा गया। प्रारम्भिक काल में विकास पर चिंतन भी अर्थशास्त्रियों के द्वारा ही किया गया। अर्थशास्त्रियों ने विकास का तात्पर्य देश में सुरक्षा एवं उपभोक्ता वस्तुओं का अधिकाधिक उत्पादन ही माना। इनके अनुसार विकास सामाजिक विषयों के अध्ययन का केन्द्र बिन्दु बन गया। विकास के नाम पर विश्व की जनसंख्या के एक बड़े हिस्से के द्वारा आरामदायक एवं विलासिता की जीवन पद्धति अपनायी गयी अर्थात् विकास का तात्पर्य तरह-तरह के खाद्य पदार्थ और वस्तुओं को प्राप्त करना तथा अनेक प्रकार के मनोरंजक साधनों का उपलब्ध कराना था। इस प्रकार सदियों से विकास के सम्बन्ध में मानव की यह धारणा थी कि अधिक से अधिक धन की उपलब्धता हो, किन्तु धीरे-धीरे विकास के तात्पर्य में परिवर्तन आया और इसके अन्तर्गत सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों में परिवर्तन को विकास का आधार माना गया, इस प्रकार विकास के संबंध में प्रत्येक दृष्टिकोण से अनेक सिद्धांतों का निर्माण हुआ जिनमें से कुछ प्रमुख विकास के घटक निम्नांकित हैं –

1. आर्थिक विकास, 2. सामाजिक विकास, 3. राजनीतिक विकास, 4. पर्यावरणीय विकास।

आर्थिक विकास

चूँकि काफी समय तक विकास एवं आर्थिक विकास समानान्तर था; अतः विकास का मतलब आर्थिक विकास से ही लगाया जाता है, फिर भी आर्थिक विकास के तात्पर्य के सम्बन्ध में पर्याप्त भेद हैं। कुछ विद्वानों ने व्यक्ति को एवं अन्य ने राज्य को केन्द्र बिन्दु मानकर आर्थिक विकास की परिभाषा दी है। उन समस्त विचारों की समीक्षा के पश्चात् उन्हें मुख्य रूप से तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

1. राष्ट्रीय आय में वृद्धि ही आर्थिक विकास है–अनेक विद्वानों का मत है कि आर्थिक विकास के अन्तर्गत राष्ट्रीय आय में दीर्घकालिक एवं सतत् वृद्धि होती है। इस मत से संबंधित प्रमुख विचारकों में Mere, Baldwin Pal, Alliart Kudgent इत्यादि का मानना है कि वास्तव में विकास राष्ट्र के पैमाने पर ही मापा जा सकता है।

अगर राष्ट्रीय आय में निरंतर वृद्धि होती है तो निश्चित ही राष्ट्र का विकास होता है। इस प्रकार इन विचारकों के अनुसार सकल राष्ट्रीय आय में निरंतर वृद्धि होना ही विकास है।

2. प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि ही विकास है—अनेक विद्वान उपरोक्त विचारधारा से सहमत नहीं है। इस मत के विचारकों का कहना है कि जब तक प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि नहीं होती तब तक उसे आर्थिक विकास नहीं माना जा सकता, क्योंकि समाज का बड़ा वर्ग दलित, दमित एवं शोषित है इसके बावजूद राष्ट्रीय आय में वृद्धि हो जाती है। इस मत के प्रमुख विचारकों में *Willamson, Patrik, Harwary, Livinstin, Livis crows, Rastov, Bengamin and Hingish* के नाम उल्लेखनीय हैं।

इस मत के समर्थक यह मानते हैं कि आर्थिक विकास तभी माना जा सकता है जबकि प्रति व्यक्ति आय में बड़े स्तर में वृद्धि हो। यदि किसी राष्ट्र की अधिकांश जनता गरीबी भूख और तरह-तरह के अभाव में है और कुछ प्रतिशत लोगों की आय में वृद्धि के कारण राष्ट्रीय आय में वृद्धि हो जाये तो इसे वास्तविक विकास नहीं माना जा सकता।

3. जन कल्याणकारी कार्यों में वृद्धि ही आर्थिक विकास है—अनेक विद्वानों का मानना है कि प्रति व्यक्ति आय एवं राष्ट्रीय आय में वृद्धि के बावजूद लोक कल्याणकारी कार्यों में राज्य के द्वारा वृद्धि नहीं की जाती तो इसे हम आर्थिक विकास नहीं कह सकते हैं। आर्थिक विकास के अन्तर्गत यह आवश्यक है कि जनता को उसकी मूलभूत आवश्यकताओं एवं सुविधाओं को मुहैया कराया जा सके। वास्तव में विकास की इसी अवधारणा के कारण लोक कल्याणकारी भावना का विकास हुआ। इस सिद्धांत के प्रमुख विद्वानों में है—**ब्राइटए सिंग, ओकेन एवं रिचर्ड्सन** इत्यादि।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि आर्थिक विकास से सम्बन्धित अनेक मान्यताँ हैं। उन मान्यताओं के आधार पर आर्थिक विकास की निम्नांकित विशेषताएं हैं—

1. आर्थिक विकास एक निरंतर चलने वाली प्रकिया है।
2. इसके अन्तर्गत राष्ट्रीय आय एवं प्रतिव्यक्ति आय दोनों में ही वृद्धि होती है।
3. इसके अन्तर्गत वृद्धि सतत जारी रहती है।
4. राष्ट्र के समग्र संसाधनों का अधिकतम उपयोग किया जाता है।
5. इसके अन्तर्गत जन-कल्याण सामान्य के जीवन स्तर में गुणात्मक सुधार होता है।
6. आर्थिक विकास तभी माना जाता है जब राज्य अधिकतम व्यय लोक कल्याण से सम्बनधित सेवाओं पर करता है।

सामाजिक विकास

वर्तमान समय में विकास के आयाम में सामाजिक विकास की प्रक्रिया को विशेष बल दिया जा रहा है। पहले आर्थिक विकास को ही विकास का पर्याय माना जाता रहा

है। जिस समाज में प्रचुर धन होता है। वहाँ का समाज भी विकसित हो जाता है। किन्तु यह देखा गया है कि U.S.A. विश्व की आर्थिक विकास की पराकाष्ठा पर पहुँच चुका है। इसके बावजूद वहाँ सामाजिक सुख एवं शांति नहीं है। वहाँ पर भी समाज का एक बड़ा भाग गरीबी रेखा के नीचे जीवन-यापन करने के लिये बाध्य है। आर्थिक समृद्धि के बावजूद जहाँ एक ओर बहुत बड़ी संख्या में लोग सामाजिक बुनियादी आवश्यकताओं से वंचित रखे जाते हैं। वहीं दूसरी ओर विज्ञान व धन का उपयोग बड़े पैमाने पर विनाशक हथियार उपलब्ध कराने में किया जा रहा है। जिसके कारण विश्व न केवल छोटे-छोटे युद्धों से त्रस्त है, अपितु दो विश्व–युद्धों की विभीषिका को भी झेल चुका है। **आइंस्टीन** जैसे वैज्ञानिक को कहना पड़ा कि तृतीय विश्व–युद्ध के बारे में तो नहीं बताया जा सकता, किन्तु यदि चतुर्थ विश्व–युद्ध हुआ तो निश्चय ही वह ईंट पत्थर जैसे आदि अस्त्रों से लड़ा जायेगा। इसी प्रकार आर्थिक विकास सामाजिक मूल्यों में नैतिकता के पतन की तरफ ले जाने वाला साबित हुआ है। अतः समाज वैज्ञानिकों द्वारा सामाजिक हित के चलते, विकास पर नये सिरे से विचार करना आवश्यक हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप सामाजिक विकास पर चिन्तन प्रारम्भ हुआ, जो अब तक विकास के नाम पर हुई विसंगतियों की ओर ध्यान आकृष्ट करने एवं सार्थक विकास की परिभाषा तलाशने की दिशा में एक प्रयास था और इससे यह स्पष्ट होने लगा कि मात्र आर्थिक विकास से ही समग्र विकास सम्भव नहीं बल्कि आर्थिक विकास के साथ-साथ सामाजिक सह-अस्तित्व तथा मूल्यों पर आधारित विकास होना चाहिए।

सामाजिक विकास का तात्पर्य

सामाजिक विकास का तात्पर्य है–समाज का विकास। समाज एक अत्यन्त ही व्यापक शब्द हैं । **मैकाइवर** ने इसे सामाजिक सम्बन्धों के जाल के रूप में परिभाषित किया है। संगठन, व्यवस्था, कार्य, व्यवहार सभी कुछ समाज के अन्तर्गत आ जाता है। इस प्रकार सामाजिक जीवन का वह भाग जिसमें समाज एक अवस्था से दूसरे अवस्था में परिवर्तित होता रहता है, सामाजिक विकास कहलाता है। सामाजिक विकास के सम्बन्ध में दो प्रकार के दृष्टिकोण हैं–

1. व्यापक दृष्टिकोण 2. संकुचित दृष्टिकोण।

1. व्यापक दृष्टिकोण–व्यापक दृष्टिकोण के समर्थक विद्वानों के अनुसार सामाजिक विकास के अन्तर्गत मानव के समस्त पहलुओं को समाहित कर दिया गया है। उनके अनुसार आर्थिक एवं राजनैतिक विकास सामाजिक विकास के ही अंग हैं।

2. संकुचित दृष्टिकोण–इसके अन्तर्गत विद्वानों ने सामाजिक विकास को समग्र विकास हेतु राजनीतिक एवं आर्थिक विकास का पूरक मानते हुए इसका पृथक से अस्तित्व बताया है। इनके अनुसार सामाजिक मूल्यों एवं सामाजिक संस्थाओं में सकारात्मक एवं

वांछित परिवर्तन के माध्यम से स्वस्थ्य समाज के निर्माण की प्रक्रिया ही सामाजिक विकास है। सामाजिक विकास को स्पष्ट करने के लिये यहाँ पर कुछ परिभाषाएं दी जा रही हैं–

टालकॉट पर्सन के अनुसार–"औद्योगिकीकरण के परिणाम स्वरूप सामाजिक संस्थाओं में आया परिवर्तन ही सामाजिक विकास है।"

नोडल के अनुसार, "सामाजिक विकास का तात्पर्य समाज में आये ऐसे परिवर्तनों से लगाया जाता है जिनसे कोई भी समाज प्रगति की अवस्था में पहुँचता है।"

कुछ समाजशास्त्रियों ने विकास की मुख्य दो विशेषताएँ बताई हैं–

(1) ज्ञान की प्रगति, (2) प्रकृति पर मानवीय नियंत्रणों के फलस्वरूप आर्थिक जीवन में घटित निश्चित एवं मापे जाने वाले परिवर्तन।

किन्तु विकास का यह संकुचित दृष्टिकोण है। व्यापक दृष्टिकोण के अनुसार समाज में विकास को किसी निश्चित सीमा में बांधा नहीं जा सकता। इनके अनुसार सामाजिक विकास जीवन के सभी क्षेत्रों को प्रभावित करता है।

एस. डिसूजा के अनुसार–"सामाजिक विकास एक प्रक्रिया है जिसके कारण अपेक्षाकृत सरल समाज एक विकसित समाज में विकसित होता है।"

इस परिणाम के फलस्वरूप समाज में सामाजिक गतिशीलता, शिक्षा के स्तर, नगरीकरण की दर तथा राजनीतिक दृष्टिकोणों में उल्लेखनीय परिवर्तन होता है।"

सामाजिक विकास की विशेषताएं

1. इसके अन्तर्गत भौतिक पर्यावरण के ऊपर समाज का नियन्त्रण बढ़ता है।
2. व्यक्तिगत सम्बन्धों की जगह सामाजिक सम्बन्धों का विकास होता है।
3. धर्म के प्रभाव में कमी आती है।
4. प्रत्येक वर्ग को कुछ न कुछ श्रम एवं जीविकोपार्जन के साधन उपलब्ध होते हैं।
5. शिक्षा के स्तर में वृद्धि होती है।
6. सामाजिक गतिशीलता बढ़ती है।
7. सामाजिक विकास को प्रेरणा आर्थिक विकास से प्राप्त होती है।
8. सामाजिक विकास एक सतत् एवं दीर्घकालिक प्रक्रिया है।
9. सामाजिक विकास के कारण एक सरल समाज जटिल समाज में परिवर्तित हो जाता है।

सामाजिक विकास की प्रक्रिया के चरण

जैसा कि पूर्व में बताया जा चुका है कि सामाजिक विकास एक सतत् एवं दीर्घकाल तक चलने वाली प्रक्रिया है। सामाजिक विकास को प्रेरणा आर्थिक विकास से प्राप्त होती है। अतः सामाजिक विकास की प्रक्रिया आर्थिक विकास के चरणों पर आधारित है। समाज प्रायः अर्थ–व्यवस्था के अनुकूल ही ढलता रहा है। अतः इस प्रकार सामाजिक विकास की प्रक्रिया को निम्नांकित 5 चरणों में विभाजित किया गया है–

(1) आदिम समाज, (2) परम्पराओं प्रथाओं से अवगत समाज, (3) वैज्ञानिक एवं तकनीकी ज्ञान से युक्त समाज, (4) औद्योगिक समाज, (5) विकसित समाज।

जैसा कि पूर्व में बताया जा चुका है सामाजिक विकास अत्यन्त ही व्यापक शब्द है। सामाजिक विकास के अन्तर्गत सामाजिक मूल्यों की स्थापना के साथ–ही–साथ आर्थिक, राजनीतिक दृष्टि से भी व्यवस्थित समाज के निर्माण का प्रयास किया जाता है। यही कारण है कि सामाजिक विकास की पूर्वगामी प्रक्रिया के रूप में आर्थिक एवं राजनीतिक विकास की स्थापना को आवश्यक बताया है। जब तक आर्थिक एवं राजनीतिक दृष्टि से व्यवस्थित समाज नहीं होगा, तब तक हम वहाँ पर विकसित समाज के लिए आवश्यक मूल्यों की स्थापना नहीं कर सकते हैं।

राजनैतिक विकास

सामाजिक विकास के साथ-साथ राजनीतिक संस्थाओं का महत्व भी बढ़ता रहता है। इस सन्दर्भ में सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में संचालित किये जाने वाले विकास से सम्बन्धित कार्यक्रमों का प्रभाव सम्बन्धित देश की राजनीतिक संरचना पर भी पड़ता है। यह प्रभाव सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों ही प्रकार का हो सकता है। उदाहरण के लिये आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप राजनीतिक दलों एवं दबाव समूहों का स्वरूप भी परिवर्तित होता है; अतः विकास के समग्र प्रादर्श के लिये यह आवश्यक है कि हम राजनीतिक विकास को लाने के लिये राजनीतिक व्यवस्था में सकारात्मक परिवर्तन ला सकें। राजनीतिक विकास की संकल्पना सर्वप्रथम राजनीतिज्ञों एवं नीति निर्माताओं के द्वारा प्रस्तुत की गई। तत्पश्चात् अर्थशास्त्र एवं समाजशास्त्र के विद्वानों द्वारा महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया गया। 1945 के पूर्व पाश्चात्य देशों में **डार्विन के विकासवादी सिद्धांत** का प्रभाव इस कदर था कि वे समस्त विश्व को क्रमिक रूप से अनन्त विकास की दिशा में गतिशील मानते थे। 1950 व 1960 के दशक में नये राज्यों का स्वरूप ग्रहण करने वाले राज्यों ने राजनीति–शास्त्रियों एवं समाजशास्त्रियों के ध्यान को आकर्षित किया तथा उन्होंने इन गैर पाश्चात्य राजनीतिक संस्थाओं का भी अध्ययन कर उन्हें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक पृष्ठभूमि के आधार पर करना प्रारंभ किया। जिससे विकास व्यवस्था-सिद्धांत के अन्तर्गत किया गया था। राजनीतिक विकास के सिद्धांत निर्माण की प्रक्रिया 1960 के दशक से प्रारम्भ हुई जब **आमण्ड** और **कोल मैन** की पुस्तक ``The Politics of the Developing Areas" का प्रकाशन हुआ। इसके अलावा **लुसियन पाई, गाइब्रियल आमण्ड, जेम्स कोलमैन, डब्लू.एच.हिगिंस, डेविड एप्टर, हेराल्ड रसले, कार, डब्लु डायच, डेनियल लरर्नर, टेलकॉट पर्सन, जोन एटरनल** इत्यादि अनेक विद्वानों ने राजनीतिक विकास की अवधारणा के सम्बन्ध में पाश्चात्य देशों के अलावा मुख्य रूप से तृतीय विश्व के देशों का अध्यन प्रारंभ किया।

राजनीतिक विकास का तात्पर्य–कुछ विद्वानों का मत है कि राजनीतिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत राज्य की शक्तियों में वृद्वि होती है। कुछ अन्य विद्वान राजनीतिक विकास के अन्तर्गत शासन व्यवस्था के सुधार को सम्मिलित करते हैं। इसके अलावा कुछ विद्वानों ने सुव्यवस्थित शासन संचालन की प्रक्रिया को ही राजनीतिक विकास मानते हैं। विद्वानों का एक वर्ग प्रजातांत्रिक एवं सहभागिता में अधिकाधिक वृद्धि को राजनीतिक विकास का लक्षण मानता है। इस विषय के प्रारम्भिक लेखको में **लुसियन पाई** वह व्यक्ति था जिसने राजनीतिक विकास की संकल्पना का सबसे अधिक गहराई से अध्ययन किया। उसने 1965 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'Political Culture and Political Development' की प्रस्तावना में तीन स्तरों पर राजनीतिक विकास के चिह्न माने हैं–

1. समस्त जनता के सन्दर्भ में।
2. प्रशासन एवं राजनैतिक व्यवस्था के उपलब्धियों के सन्दर्भ में।
3. राज्य शासन व्यवस्था के प्रकृति के सन्दर्भ में।

अगली रचनाओं में **लुसियन पाई** ने राजनीतिक विकास का अपना प्रादर्श प्रस्तुत किया है, जो निम्नलिखित है–

1. राजनीतिक विकास आर्थिक विकास की पूर्व की आवश्यकता हैं।
2. राजनीतिक विकास औद्योगिक समाज के लिए राजनीतिक प्रादर्श है।
3. राजनीतिक विकास राजनीतिक आधुनिकीकरण को अंगीकृत करता है।
4. राजनीतिक विकास निर्माण की प्रक्रिया है।
5. राजनीतिक विकास प्रशासनिक एवं विधिक विकास है।
6. प्रजातंत्र का निर्माण ही राजनीतिक विकास है।
7. स्थायित्व एवं व्यवस्थित परिवर्तन ही राजनीतिक विकास है।
8. गत्यामकता ही राजनीतिक विकास है।
9. राजनीतिक विकास सामाजिक विकास एवं परिवर्तन के बहुआयामी प्रक्रिया का एक रूप है।
10. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में राष्ट्रीय सम्मान का बोध ही राजनीतिक विकास है।

लुसियन पाई के अनुसार राजनीतिक विकास के अन्तर्गत निम्नांकित तीन बातों का होना आवश्यक है–

1. समानता, 2. विभेदीकरण, 3. क्षमता ।

1. समानता–इस अवस्था में नागरिक अपने को प्रजा मानकर उच्च अधिकारियों से मिले आदेशों को चुपचाप सहन नहीं कर लेते हैं बल्कि राजनीतिक निर्णयों के निर्माण में योगदान करते हैं। इस प्रकार एक विकासशील राजनीतिक व्यवस्था में राज्य के कार्यों में अधिकाधिक भाग लेने के कारण जन साधारण समानता के सिद्धांतों के प्रति अधिक संवेदनशील हो जाता है।

2. **क्षमता**—**लुसियन पाई** के अनुसार राजनीतिक विकास की स्थिति में सार्वजनिक कार्यों के संचालन करने में, वैज्ञानिक मतभेदों में, नियंत्रण रखने और सार्वजनिक विवादों के साथ निपटने की राजनीतिक व्यवस्था की क्षमता का विकास अधिक हो जाता है।

3. **विभेदीकरण**—जहाँ तक राजनीतिक व्यवस्था के गठन का सम्बन्ध है; एक विकासशील राजनीतिक व्यवस्था से अपेक्षा की जाती है कि उसकी सहभागी संस्थाओं में संरचनात्मक विभेदीकरण प्रकार्यात्मक विशिष्टता और समाकलन की मात्रा बढ़ती जायेगी। **लुसियन पाई** के अनुसार किसी भी विकासशील व्यवस्था के अध्ययन में उपर्युक्त तीनों विशेषताएं जिस स्तर तक विकसित पाई जाती हैं। उसी स्तर का राजनीति विकास भी होता है।

इन्हीं विशेषताओं को **कोलमैन** ने विकासात्मक संलक्षण (Development System) बताया है।

राजनीतिक विकास को विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से स्पष्ट करने का प्रयास किया है किन्तु वास्तव में राजनीतिक सुधारों एवं राजनीतिक नवाचारों (Innovation) दोनों का शामिल किया गया है और इस प्रकार एशिया और अफ्रीका के विकासशील देशों में शासन व्यवस्था एवं राजनीतिज्ञ क्षेत्र में की जा रही समस्त गतिविधियों को इसके अन्तर्गत समाहित किया गया है।

संस्थात्मक उपागम

इस उपागम के प्रमुख समर्थक उत्तर व्यवहारवादी विचारक हैं जिनमें से David Easton, Gabrial Almond, Pavel, Cole Man, Arnald Breeht इत्यादि प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। David Easton ने इनपुट—आउटपुट (निवेश—निर्गत) सिद्धांत प्रस्तुत किया जिसके अनुसार संस्थाओं में जिस प्रकार का निवेश होता है, उसी प्रकार का निर्गत होता है अर्थात् संस्था के स्वरूप की अपेक्षा उसके निवेश और निर्गत में संशोधन करके विकास किया जा सकता है।

संरचनात्मक उपागम

इस सम्बन्ध में दूसरा दृष्टिकोण Gabrial Almond और Pavel का है इनका कहना है कि निवेश की अपेक्षा संरचना के स्वरूप और निर्गत ही किसी संस्था के लक्ष्यों को प्राप्त कराने में सहायक सिद्ध होते हैं। इनके अनुसार निवेश के रूप में मांग आकांक्षाएँ, घोषणाएँ प्रतिवेदन इत्यादि जो भी संरचना तक पहुँचते हैं। उसका Processing संरचना को करना पड़ता है। अतः संरचना कैसी है इस पर ही उसका निर्गत निर्भर करता है। इनके अनुसार जो निर्गत प्राप्त होता है उसको कार्य कहा गया है। कार्य को इन्होंने दो रूपों में बांटा है; यथा—(1) प्रकार्य, (2) विकार्य।

कोई भी कार्य यदि विकास की तरफ ले जाने वाला हो तो वह प्रकार्य है तथा इसके विपरीत ले जाने वाले कार्य को विकार्य के नाम से जाना जाता है।

इसके अलावा कुछ अन्य विद्वानों ने संस्थागत उपागम के अन्तर्गत यह विश्लेषण दिया है कि व्यक्तिगत प्रयासों की अपेक्षा संस्थागत रूप से किये गये प्रयास अधिक प्रभावकारी होते हैं अतः सामूहिक प्रयास के माध्यम से विकास को गति प्रदान किया जाये।

इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर वर्तमान समय पर अनेक सामूहिक प्रयास संचालित हैं, जैसे–

1. सहकारिता संस्थाओं के माध्यम से,
2. ग्राम सभाओं के माध्यम से,
3. स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से,
4. अशासकीय संस्थाओं के माध्यम से,

पर्यावरणीय विकास के सिद्धान्त एवं उनका सतत् विकास

वर्तमान में समस्त विश्व में विकास के प्रति एक नया चिंतन प्रारम्भ हुआ है। इसके अन्तर्गत पर्यावरण को केन्द्र बिन्दु मानकर विकास का मूल्यांकन किया जाने लगा हैं। वर्तमान में यह माना जा रहा है कि वैज्ञानिक प्रगति एवं उपभोग की निरंतर बढ़ती आकांक्षा के परिणामस्वरूप विश्व में प्रकृति प्रदत्त संसाधनों का तीव्र गति से उपभोग प्रारम्भ हो गया है। इसके अन्तर्गत आने वाले वैज्ञानिक समस्याओं एवं चुनौतियों के परिणामस्वरूप इस उपभोगवादी संस्कृति के विरुद्ध प्रतिक्रियाएँ उभरकर आईं। अनेक विद्वानों का यह मानना है कि मात्र उपभोग ही विकास का सूचक नहीं है, क्योंकि जिस गति से वर्तमान समय में संसाधनों का दोहन हो रहा है। वैसी परिस्थिति में कुछ ही समय में संसाधन समाप्त हो जायेंगे।

पर्यावरण दो शब्दों परि + आवरण से मिलकर बना है। पर्यावरण में 'परि' से तात्पर्य है चारों ओर तथा 'आवरण' का तात्पर्य है कवच या खोल अर्थात् पर्यावरण का तात्पर्य है हमारे चारों ओर का वातावरण। पृथ्वी के ऊपर अनेक प्रकार के आवरण पाये जाते हैं जो यहाँ के जीवधारियों के जीवन को गतिशील रखने में सहायक होते हैं। इसके अन्तर्गत भू-मण्डल, जलमण्डल एवं वायुमण्डल में पाई जाने वाली समस्त वस्तुएँ आती हैं।

पर्यावरण के अन्दर पाई जाने वाली समस्त वस्तुएँ एक सीमित मात्रा में पायी जाती हैं। जिसके मध्य एक पर्यावरणीय संतुलन पाया जाता है।

विकास को जैसा कि पूर्व में समझाया जा चुका है यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से सकारात्मक दिशा में वांछित परिवर्तन लाने के लिए नियोजित ढ़ंग से प्रयास किया जाता है। यह एक सतत् प्रक्रिया है उसी संदर्भ में पर्यावरणीय विकास का तात्पर्य ऐसे विकास से है जिसमें वांछित विकास पथ पर कोई भी राष्ट्र इस प्रकार अग्रसरित होता

है कि उसका पर्यावरणीय संतुलन भी बरकरार रहे तथा आर्थिक एवं सामाजिक परिवर्तन भी अपेक्षित मात्रा में एवं सकारात्मक दिशा में निरन्तर होता रहे।

पर्यावरणीय विकास के लिए किये गये प्रयास

यद्यपि अत्यन्त प्राचीन काल से हमारे पूर्वज पर्यावरणीय विकास के लिये जागरूक रहे हैं। तथापि निरन्तर प्रगति सम्भव नहीं हो सकी है।

उदाहरण के लिये वैदिक काल में न केवल वृक्ष, नदी, वायु, सूर्य, पृथ्वी इत्यादि को देवता माना गया था अपितु इनके परिरक्षण एवं संरक्षण के लिये अनेक नैतिक मूल्यों की स्थापना की गई। उदाहरण के लिये वृक्षों एवं नदियों को देवता बताते हुए वृक्षों को न काटने तथा नदियों में शुद्धतापूर्वक प्रवेश के नियम बनाये गये।

इसी प्रकार वृक्षारोपण से न केवल पुण्य की प्राप्ति होना बताया गया अपितु वृक्षारोपण से व्यक्ति के पूर्वजों की शांति का प्रावधान भी किया गया है। इसी प्रकार वायु प्रदूषण को रोकने के लिए खुले में मल-मूत्र त्यागने के लिए रोक लगाया गया।

इसी प्रकार वैदिक साहित्य में यज्ञ इत्यादि का भी प्रावधान किया गया जिससे कि वातावरण शुद्ध होता है।

वर्तमान उपभोगवादी संस्कृति के विकास के साथ ही विश्व के प्रत्येक देशों में पर्यावरणीय चेतना में ह्रास हुआ जिसके परिणामस्वरूप न केवल पर्यावरण प्रदूषण की समस्याएँ उभरकर के आईं अपितु पारिस्थितिक, असंतुलन के रूप में अनेक गम्भीर संकेत की चुनौतियाँ विश्व के समक्ष उत्पन्न हो गई हैं।

उदाहरण के लिए ध्रुवों पर बर्फ पिघलने की समस्या, ओजोन परत में छिद्र की समस्या, विकास के संसाधन स्त्रोतों की समाप्ति की समस्या, स्वास्थ्य की समस्या, जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि की समस्या।

सर्वप्रथम 1987 में **पृथ्वी शिखर सम्मेलन** ब्राजील की राजधानी **रियो-डी-जीनिरो** में आयोजित किया गया जिसमें पृथ्वीवासियों के भविष्य पर गम्भीर चिंतन एवं विचार विमर्श किया गया। इसके परिणामस्वरूप हमारे समक्ष यह चुनौती रखी गई कि केवल विकसित हो जाना स्वयं में पूर्ण नहीं है अपितु हमें इस बात का ध्यान रखना है कि हमारा विकास पर्यावरणीय संतुलन को बनाये रखते हुए एक समग्र दृष्टिकोण पर आधारित होना चाहिए। इस सम्मेलन के पश्चात् पर्यावरणीय विकास पर गम्भीर चिंतन किया गया और विकास का लक्ष्य यह निर्धारित किया गया कि आज वर्तमान पीढ़ी जिन सुख सुविधाओं का उपभोग कर रही है, वह हमारे भावी पीढ़ी की भविष्य की कीमत पर नहीं होना चाहिए।

पर्यावरणीय विकास के तत्व

1. सतत् आर्थिक विकास का होना।
2. संसाधनों का उपभोग न कि दोहन।

3. पर्यावरणीय संतुलन बनाये रखने वाला विकास।
4. विकास के परिणामस्वरूप भावी पीढ़ी को संकट न होना।

स्टाक होम में मानव तथा पर्यावरण विषय पर आयोजित सम्मेलन (1972 में) स्व. **इन्दिरा गाँधी** ने कहा था–''मेरा अनुभव रहा है कि जो लोग प्रकृति के प्रतिकूल होते हैं, वे लोग मानव द्वेषी और अविवेकी होते हैं। आधुनिक मनुष्य को प्रकृति और जीवन के मध्य एक अटूट सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए। उसे पुनः बढ़ने वाली ऊर्जा का सहयोग करना भी सीखना चाहिए। उसे यह सोचना चाहिए कि हम पृथ्वी और वायुमण्डल से उतना ही ले सकते हैं जितना उन्हें वापस दे दें।

पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान

1. प्रकृति के साथ संवेदनशील सम्बन्ध।
2. मानवीय अनुक्रियाओं का नियमन।
3. संसाधन संवर्धन और संरक्षण युक्त विदोहन।
4. प्रकृतिवादी शिक्षा का प्रचार।
5. नगरीकरण के विस्तार पर प्रतिबन्ध।
6. राजनैतिक प्रतिस्पर्द्धा में सुधार।
7. पर्यावरण के प्रति विश्वव्यापी जनमत निर्माण।
8. अवशिष्टों का पुर्नप्रयोग।
9. ऊर्जा के वैकल्पिक साधनों का विकास।
10. कृषि और पशुपालन का उपयोग पर्यावरण के अनुसार।

सामाजिक परिवर्तन और विकास

परिवर्तन प्रकृति का नियम है, प्रत्येक वस्तु निरंतर परिवर्तनशील है, यही कारण है कि मानव समाज भी पूर्ण परिवर्तनशील है लेकिन परिवर्तन का स्वरूप क्या है ? या परिवर्तन किस दिशा में होता रहा है ? यह जानना आवश्यक है । यदि सकारात्मक दिशा में परिवर्तन हो रहा है तो उसे हम विकास कहते हैं किन्तु यदि परिवर्तन नकारात्मक दिशा में हो रहा है तो उसे अवनति कहते हैं। मानव समाज भी सदैव से प्रकृति के सदृश ही निरन्तर परिवर्तनशील रहा है। परिवर्तन के संबंध में दो प्रकार के दृष्टिकोण पाये जाते हैं

1. ईश्वरवादी या भाग्यवादी दृष्टिकोण जिसके तहत प्रत्येक व्यक्ति अपने पूर्व कर्मो के अनुसार स्थितियाँ प्राप्त करता है किन्तु आधुनिक वैज्ञानिक अवधारणा के समस्त विद्वान इस विचार को नहीं मानते हैं। डार्बिन के विकासवादी सिद्धांत के अनुसार परिवर्तन का प्रमुख कारण Survival of the fittest (योग्यतम की अतिजीविता) को ही मानते हैं।

इस प्रकार निरन्तर अपने को बनाये रखने के लिये प्रयास का परिणाम ही आधुनिक विकसित मानव समाज है। ऐतिहासिक दृष्टि से सामाजिक परिवर्तन के इस स्वरूप को मुख्य रूप से निम्नांकित भागों में विभाजित किया जा सकता है–

1. आदिम समाज।
2. आदिम समाज से कृषक समाज में परिवर्तन।
3. कृषक समाज से सामन्तवादी समाज में परिवर्तन।
4. सामन्तवादी समाज से अद्योगिक समाज में परिवर्तन।
5. औद्योगिक समाज से वैश्वीकरण।

(1) आदिम समाज

सभ्यता के उद्‌भव के पूर्व मानव और अन्य प्राणियों में कोई विशेष अन्तर नहीं था क्योंकि प्राचीनकाल में मानव अन्य प्राणियों के सदृश ही वृक्षों गुफाओं नदियों के तलहटियों तथा अन्य ऐसे ही स्थानों में निवास करता था। इस समय का मानव किसी एक स्थान में रहने के बजाए भ्रमणशील था। इस काल के मानव के सामुदायिक स्वरूप के सम्बन्ध में कोई विशेष ऐतिहासिक साक्ष्य प्राप्त नहीं हुए। किन्तु अनेक विद्वानों ने अपने कल्पना के अनुसार आदिम समाज के बारे में विस्तृत वर्णन किया है। **हाब्स** का कहना है कि आदिम समाज में मानव का जीवन अत्यन्त कष्टमय था। इस काल का मानव अत्यन्त ही झगड़ालू, निकृष्ट एवं डरपोक था। इस काल के मानव का जीवन निरन्तर खतरे में पड़ा रहता था, इसी प्रकार **लॉक** ने आदिम समाज की कल्पना की है। किन्तु इसके अनुसार आदिम समाज का जीवन बड़ा ही सुखमय था। इस काल में मानव पूर्णतः स्वतंत्र था, जो मिला खा लिया जहाँ मिला सो लिया और जहाँ इच्छा हुई वहाँ घूमता रहा।

इसी प्रकार रूसो ने भी अपनी परिकल्पना प्रस्तुत किया। उसके अनुसार मानव न तो सुखमय जीवन व्यतीत करता था और न ही कष्टों में था किन्तु वह सर्वत्र अबाध रूप से भ्रमण करता था तथा अपनी समस्त स्वतन्त्रता का उपभोग करता था।

इसी प्रकार आदिम समाज के बारे में इतिहास–वेत्ताओं ने भी अनेक पुरातात्विक साक्ष्यों के अनुसार यह निष्कर्ष निकाला है कि आदिम मानव आखेट इत्यादि के आधार पर अपना जीवन व्यतीत करता था जो कि इस काल के मिले पत्थरों के औजारों के द्वारा सिद्ध होता है। इतिहास–वेत्ताओं ने इस काल को पाषाण युग के नाम से पुकारा है, क्योंकि इस काल में मानव को धातुओं का ज्ञान न होने के कारण उसके द्वारा पत्थरों (पाषाण) के हथियारों का प्रयोग किया जाता था।

3. आदिम समाज से कृषक समाज में परिवर्तन

पृथ्वी पर होने वाले भौगोलिक परिवर्तनों के कारण पृथ्वी के पर्यावरण में व्यापक परिवर्तन हो गया। जैसे-जैसे पर्यावरण अनुकूल होता गया मनुष्य गुफाओं व जंगलों से

निकल कर मैदानों में प्रवेश कर गया। अब मानव ऐसे कुछ पेड़ पौधों को उगाने की तरकीब भी जान गया जिनसे भोजन की आवश्यकता की पूर्ति भी हो सकती थी। किन्तु इस प्रकार के पौधों की सुरक्षा के लिये एक स्थान पर लम्बे समय तक रुकना पड़ता था। इसके परिणामस्वरूप आदिम समाज से कृषक समाज का उद्भव हुआ। इस समय मानव एक सामाजिक जीवन व्यतीत करने लगा। धीरे-धीरे इस काल के मानव ने आग का आविष्कार किया एवं कृषि के अनेक उपकरणों का भी इस काल में निर्माण हुआ। चूँकि सभ्य मानव ने सर्वप्रथम कृषि एवं पशु को ही अपने जीविकोपार्जन का साधन बनाया। यही कारण है कि **कृषि एवं पशुपालन को प्राइमरी सेक्टर** के नाम से जाना जाता है। कृषक समाज भी प्रारम्भ में कबीलों के रूप में घूमा करता था वह एक स्थान पर कुछ समय तक रहकर फिर अपना स्थान प्रायः परिवर्तित कर देता था, किन्तु धीरे-धीरे एक कबीले के लोग एक स्थान पर निवास करने लगे और जिसे ग्राम के नाम से पुकारा जाने लगा। यही कारण है कि इस काल के समाज को **ग्रामीण समाज** के रूप में भी जाना जाता है।

कृषक समाज से सामन्तवादी समाज में परिवर्तन

कृषक समाज से धीरे-धीरे सामन्तवादी समाज का उद्भव व विकास हुआ। सामन्तवादी समाज के उद्भव के पीछे प्रमुख कारण कबीलों के मध्य हुए युद्ध और उसके परिणामस्वरूप अन्य कबीले को अपने अधीनस्थ बनाने की प्रकृति रही है। इस काल में जो कबीला हार जाता था उसको अधीनस्थ बना लिया जाता था और वहाँ के निवासियों को दास । धीरे-धीरे एक सत्ता के आधीन अनेक कबीले आ गये और इस प्रकार पिरामिडनुमा सामन्तवादी व्यवस्था उभर कर आई। प्रारम्भिक अवस्था में कुछ ग्रामों को मिलाकर एक अलग इकाई बनाई जाती थी जिसे **जनपद** के नाम से जाना जाता था। इसके पश्चात् धीरे-धीरे ग्रामीण इकाइयाँ संगठित होकर जनपद, महाजनपद, राज्य सम्राज्य इत्यादि में परिवर्तित होने लगीं। इस समय शासन की व्यवस्था में सबसे शीर्ष पर राजा होता था। प्रशासन की सुविधा के लिए राज्य को कई इकाईयों में बांट दिया जाता था और प्रत्येक इकाई का अधिकारी एक सामंत होता था। प्रारम्भिक स्थिति में राजा की स्थिति शक्तिशाली रहती थी किन्तु धीरे-धीरे सामन्त अधिक शक्तिशाली होते गये। यही कारण है कि इस व्यवस्था को सामंतवादी व्यवस्था पुकारा जाता है। यह सामन्तवादी व्यवस्था पूरे विश्व में औद्योगिक क्रांति के पूर्व तक किसी न किसी रूप में रहा है। इस व्यवस्था में सबसे ज्यादा शोषण जनता का होता था, क्योंकि राजा जितना भी कर लगाता था उससे कई गुना अधिक कर सामन्त अपने अधीनस्थ सामन्तों पर लगाते थे और अधीनस्थ सामन्त जनता पर लगाते थे। इसीलिए **मार्क्स** ने इस व्यवस्था को शोषण से युक्त व्यवस्था बताया। मार्क्स का कहना है कि सामन्तों ने अपने शोषण को वैधानिक रूप देने के लिये राज्य रूपी शक्तिशाली संस्था को बनाया।

सामन्तवादी समाज से औद्योगिक समाज में परिवर्तन

औद्योगिक क्रांति के पश्चात् सामन्तवादी व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन आया। 17वीं शताब्दी में यूरोपीय देशों में औद्योगिक क्रांति हुई। औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप अब अधिक मात्रा में कच्चे माल की आवश्यकता महसूस की जाने लगी और तकनीकी आविष्कारों के परिणामस्वरूप अब अधिक उत्पादन किया जाना सम्भव हो गया। जिसके कारण उत्पादित वस्तुओं की मात्रा में वृद्धि होने के कारण उसके लिये बाजार की आवश्यकता महसूस होने लगी। इसी के परिणामस्वरूप पाश्चात्य देशों ने एशिया, अफ्रीका एवं दक्षिण अमेरिका के बहुत सारे देशों को अपना उपनिवेश बना लिया। इस प्रकार एक नये औद्योगिक समाज का उद्‌भव एवं विकास हुआ जिसमें पूँजीपति और श्रमिक उभर करके आये। पूँजीपति अपने तकनीकी ज्ञान और अपनी पूँजी के बल पर श्रमिकों के श्रम का शोषण करना प्रारम्भ किया। औद्योगिक समाज मुख्य रूप से दो विचारों पर आधारित है।

1. योग्यतम की अतिजीविता।
2. राज्य का कम से कम नियंत्रण।

इस प्रकार इन सिद्धान्तों के आधार पर पूँजीवादी व्यवस्था का उद्‌भव एवं विकास हुआ। औद्योगिक समाज का मुख्य आधार उद्योगों की सम्पन्नता है। इस समाज में एक तरफ पूँजीपति वर्ग पाया जाता है तो दूसरी तरफ श्रमिक वर्ग पाया जाता है। मार्क्स का कहना है कि पूँजीवादी व्यवस्था के विनाश का बीज भी उसी में छिपा हुआ है। उसका कहना है कि लम्बे शोषण के परिणामस्वरूप जनता में चेतना जागृत होगी। क्योंकि जिस प्रकार बड़ी मछलियाँ छोटी मछलियों को खा जाती हैं। उसी प्रकार बड़े पूँजीपति धीरे-धीरे छोटे पूँजीपतियों को प्रतियोगिता से बाहर कर देते हैं और जब इनकी संख्या अत्यन्त कम हो जाती है तो आम जनता के द्वारा अथवा शोषक वर्ग के द्वारा अधिपत्य स्थापित कर दिया जाता है। इस प्रकार औद्योगिक समाज का एक प्रकार से अन्त हो जाता है।

उपर्युक्त कथन से यह भी स्पष्ट है कि औद्योगिक समाज में एक तो सदैव प्रतिद्वन्द्विता का माहौल रहता है, दूसरे श्रमिकों के श्रम का उचित मूल्य नहीं मिल पाता है।

5. औद्योगिक समाज से वैश्वीकरण

सोवियत के पतन के पश्चात् साम्यवादी समाज की स्थापना का स्वप्न ध्वस्त हो गया किन्तु इसके स्थान पर पूरे विश्व में एक नई व्यवस्था स्थापित हुई। जिसके द्वारा उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण की प्रक्रिया को बल दिया जाने लगा। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् ही पूरे विश्व के व्यापार व्यवस्था के नियंत्रण के लिये (GATT)

(General Agreement on Trade and Tarrif) की स्थापना की गई जिसके माध्यम से विश्व के व्यापार व्यवस्था को नियंत्रित किया जाता है। 1995 में विश्व में व्यापार को नियंत्रित करने के लिए लम्बे समय से संस्था की आवश्यकता को महसूस करते हुए एक संस्था बनाने के स्वप्न को (World Health Organisation : W.T.O.) के माध्यम से साकार किया गया। इस प्रकार वैश्वीकरण के नये युग का प्रारम्भ हुआ, जिसमें समस्त विश्व को एक बाजार माना गया तथा इस सन्दर्भ में प्रत्येक देश ने अपने देश में आयात एवं निर्यात की शर्तों को उदार कर दिया है जिसके कारण निजीकरण का एक दौर प्रारम्भ हो गया। जहाँ पूर्व में लोग कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के आधार पर राज्य के ऊपर समस्त कार्यो के निपटारों का दायित्व सौंप दिया गया था वहीं पर अब बहुत सारे दायित्वों को निजी क्षेत्रों में हस्तान्तरित कर दिया गया। इस प्रकार आज हम वैश्वीकरण के युग में निवास कर रहे हैं, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपने विकास का सर्वोत्तम अवसर प्राप्त कराया जा रहा है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया अत्यन्त प्राचीन काल से है और निरन्तर जारी रही है इस प्रकार का परिवर्तन समस्त विश्व में किसी न किसी रूप में परिलक्षित हुआ है। सामाजिक परिवर्तनों के कारण ही अन्ततः देश की आर्थिक विकास के लिये आधार तैयार होता है तथा इनके कारण सांस्कृतिक परिवर्तन भी दिखाई पड़ते हैं। सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया आज भी तीव्र गति से गतिशील है ज्यों-ज्यों आर्थिक विकास होता है और व्यक्तियों का जीवन स्तर ऊपर उठता है तथा रोजगार के अवसर उपलब्ध होते हैं जिसके कारण प्रति व्यक्ति आय एवं राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है। इस प्रकार जो भी सामाजिक परिवर्तन होता है उसके कारण विकास में अनेक प्रकार की नई प्रक्रियाएँ प्रारम्भ हो जाती है। उदाहरण के लिये सूचना विज्ञान एवं प्राद्यौगिकी के विकास के परिणामस्वरूप आज समस्त विश्व सिमटकर एक ग्राम में अवस्थित हो गया है जिसके कारण 'विश्वं ग्रामे प्रतिष्ठितम्' की भावना साकार हो रही है।

3

ग्रामीण विकास

प्राचीन काल से ग्राम प्रशासन की प्रमुख इकाई रहे हैं। पुरा—पाषाण युग से ही मानव मात्र औजारों का निर्माण करने वाला, शिकार करने वाला और सन्तान पैदा करने वाला प्राणी न होकर आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक क्षमता सम्पन्न ऐसा विवेकवान, विकास-परक प्राणी था, जिसने नव-पाषाण काल में कृषि, पशुपालन, गृह—निर्माण, शिकार प्राप्ति के नये-नये तरीकों, शिल्पकारी, धातुकर्मी, प्रौद्योगिक एवं तकनीकी इत्यादि की योग्यता अर्जित करके घरों का एक ऐसा समूह निर्मित किया, जो कि समकालीन नगरों से तो छोटा किन्तु मात्र झुग्गी-झोंपड़ी एवं पुरा-पाषाण कालीन छोटे-छोटे पुरवों से कहीं अधिक व्यापक था, जिसे 'गाँव' के नाम से सम्बोधित किया गया। भारत में भी इस प्रकार की ग्रामीण संरचना विद्यमान थीं। 1830 में **सर चार्ल्स मेटकॉफ** ने इन भारतीय ग्रामीण समुदायों में से प्रत्येक को एक ऐसा राज्य स्वीकार किया है, जिसकी सामुदायिक एकता ने उनको विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, परिवर्तनों से पूर्णतया पृथक् रखा, जिससे उनकी सुख, समृद्धि, स्वतन्त्रता एवं आत्म-निर्भरता स्थाई रही। अतः आदिम सभ्यता के विकास के साथ ही राज्यों की स्थापना एवं उसके भू-भागों के विस्तार के कारण केन्द्र में किसी प्रकार की व्यवस्था होने के बावजूद भी ग्राम विकेन्द्रीकृत शासन व्यवस्था के मुख्य केन्द्र बिन्दु बने रहे, जिससे ग्रामीण स्वशासी प्रणाली के द्वारा जनतन्त्र की अबैध धारा प्रवाहित होती रही।

भारतीय ग्रामों के संदर्भ में प्रशासनिक ऐतिहासिक विवेचना से यह स्पष्ट होता है कि भूमि ग्रामों के कारण ही कृषि उत्पादन की धनी, यज्ञीय नैतिक संस्कृति की वाहक एवं मार्ग दर्शक रही है। शनैः शनैः विदेशियों के आगमन ने एवं उनकी स्वार्थ प्रिय कुटिल नीतियों ने हमारे वैदिक समाज की क्रमशः अर्थ, धर्म एवं नीति (राजनीति) का खुलकर दोहन और विघटन किया, जिसके फलस्वरूप सुख-समृद्धिवान भारतीय समाज अज्ञान, अभाव और अशक्तिपूर्ण जीवन जीने के लिए विवश-सा हो गया। ऐसे मजबूत और विवश भारतीय समाज ने अपने राम-राज्य की अवधारणा को महात्मा गाँधी, संत बिनोवा, जैसे-- युग पुरुषों के मार्गदर्शन में प्राप्त करने का संकल्प लिया। जिसका शुभारम्भ 26 जनवरी 1950 को भारत को एक गणतंत्र घोषित करके एवं उसे निश्चित निम्नानुसार उद्देश्य प्राप्ति की दिशा में अग्रसरित किया गया।

भारत एक ऐसा गाँवों का देश है जहाँ की सभ्यता तथा रीति-रिवाज कृषिमय है। यही कारण है कि गाँवों के विकास के लिए आधुनिक युग में विज्ञान तथा प्राद्यौगिकी के विकास के साथ कृषि का विकास करना भी आवश्यक है। प्रश्न यह है कि विकास की धारा में ग्रामीणों को भी कैसे जोड़ा जाये ? ग्रामीण समुदाय आरम्भ से ही अविकसित एवं पिछड़ा हुआ है। हमारे यहाँ भारत के गाँवों को भारत की आत्मा कहा जाता है, जो ग्रामीण समुदाय की इकाई है। विभिन्न धर्म ग्रंथों में इसे प्रशासनिक कार्यों की इकाई माना गया है। इसमें रहने वाले समुदाय की जनसंख्या 89 प्रतिशत सन् 1901 में थी अब भी गाँवों में करीब 80 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है। हमारे यहाँ लगभग 575936 ग्राम हैं, जो जनसंख्या के आधार पर बड़े तथा छोटे गाँव के रूप में बसे हुए हैं, जो तुलना करने पर 3000 शहरों के बराबर हैं। इन ग्रामों में लगभग 48 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा से नीचे अपना जीवन व्यतीत करते हैं। जिसका अर्थ है कि न्यूनतम भोजन की इकाई जो लगभग 2400 कैलोरी है, गाँवों में रहने वाले व्यक्तियों को नहीं प्राप्त होती।

ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारों की व्यापकता को देखा जा सकता है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित होने तथा कृषि मानसून पर आधारित होने के कारण रोजगार भी मानसून से प्रभावित होता है। इन क्षेत्रों में वर्ष में 4 महीने ही रोजगार मिलता है और शेष 8 महीने बेरोजगार रहना पड़ता है अथवा शहरों की तरफ पलायन करना पड़ता है। किसानों के पास भूमि के छोटे-छोटे टुकड़े हैं, जो आर्थिक जोत में सम्मिलित नहीं होते। उन पर लागत अधिक आती है और उत्पादन कम मिलता है। परिवार में सदस्यों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। भूमि पर जनसंख्या का दबाव बढ़ता जा रहा है। रोजगार के साधन सीमित होते जा रहे हैं। गाँवों में भूमिहीन कृषि मजदूरों तथा अन्य मजदूरों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। ये ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार पाने में सक्षम नहीं है, क्योंकि कृषि में पैतृक रोजगार पाने वालों की संख्या भी काफी अधिक है। ये ऐसे व्यक्ति हैं जो गरीबी की रेखा से काफी नीचे जीवन व्यतीत कर रहे हैं। इनको दो जून रोटी भी आसानी से नसीब नहीं होती है।

ग्रामीण क्षेत्रों में क्रय शक्ति में निरन्तर कमी होती जा रही है। ग्रामीण जनता को कृषि उत्पादन का बहुत ही कम मूल्य मिलता है। आजादी के पाँच दशक बाद भी गाँव का कृषक ऋण की बेड़ी से जकड़ा हुआ है। कई बैंकिग एवं वित्तीय संस्थाओं की स्थापना के बावजूद गाँव के लोग 60 प्रतिशत से अधिक वित्त पूर्ति देशी महाजन या बड़े कृषक से करते हैं, उन्हें आज भी आर्थिक मामलों में खुद को निर्णय लेने का अधिकार नहीं है। बैंकों की ऋण प्रक्रिया कठिन है तथा बैंकों का लाभ केवल बड़े लोग ही उठा पाते हैं। आज गरीबी मिटाने की कई योजनाएँ है; जैसे–समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, राष्ट्रीय रोजगार कार्यक्रम आदि। लेकिन इन योजनाओं का लाभ भी बड़े कृषक ज्यादा उठाते हैं; छोटे और गरीब ग्रामीण कम; क्योंकि इन योजनाओं में चयन करने की शक्ति समूह

कृषकों के पास होती है। यह देखने में आया है कि अधिकांश सरपंच सम्पन्न वर्ग से होते हैं तथा उनके वोट बैंक भी कतिपय धनी लोग ही होते हैं। ऐसे सैकड़ों उदाहरण हैं जब इन कार्यक्रमों में उन लोगों का चयन हो जाता है जिसके पिता के नाम लाखों रुपये की जमीन और सम्पत्ति है। हमारे देश को अंग्रेजी शासन ने खोखला तो किया ही, आर्थिक रूप से लोगों को जर्जर भी कर दिया। अपनी सरकार ने इससे निपटने के लिये योजनाएँ बनाई। इससे निपटने और बहुमुखी विकास के लिय पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से अनेक कार्यक्रम चलाये। कृषि की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये योजनाएँ बनाई और उनको कार्यान्वित करने का यथासम्भव प्रयास किया गया है। पिछले 50 वर्षों की प्रगति पर निगाह डालें तो एक शंका–सी पैदा होती है कि जितना धन विकास योजनाओं पर खर्च किया गया क्या उतनी उपलब्धि नहीं प्राप्त हुई ?

ग्रामीण विकास का सही अर्थ है, गाँव में गरीबी-रेखा से नीचे रहने वाले लोगों का जीवन स्तर ऊँचा करना और गाँव को खुशहाल बनाना । इस प्रक्रिया में आर्थिक और सामाजिक दोनों पहलुओं का समावेश होता है। आर्थिक से तात्पर्य है–आय, उत्पादन, रोजगार, व्यावसायिक चेतना। ग्रामीण विकास के क्षेत्र में कृषि पर विशेष बल देना चाहिए। इसके साथ संलग्न कुछ बुनियादी भौतिक सुविधाएँ, जैसे–संचार, विपणन, वित्त, परिवहन आदि का भी विकास होना चाहिए। कृषि के विकास का मुख्य लाभ उन जमींदारों एवं कृषकों को होता है जिनके पास पर्याप्त मात्रा में जमीन है। इससे संलग्न अन्य बुनियादी भौतिक सुविधाओं में विकास होना चाहिए। कृषि के विकास का मुख्य लाभ उन जमींदारों एवं कृषकों को होता है जिनके पास पर्याप्त मात्रा में जमीन है। इससे सलंग्न अन्य बुनियादी भौतिक सुविधाओं में विकास का लाभ उस वर्ग को होता है जिसका उत्पादन के साधनों पर नियन्त्रण है। गरीब व्यक्ति को नाम मात्र का लाभ अल्पकालिक मजदूरी के रूप में होता है; परन्तु जैसे-जैसे वास्तविक मजदूरी कम होती जाती है उसकी दशा और बिगड़ती जाती है। अतः ग्रामीण विकास का दिशा-निर्देशन और नीति-निर्धारण सरकार के लिए एक विशेष चिन्तन का विषय है। इसका मूल्यान्कन एवं अवलोकन व्यापक संदर्भ में देश की बदलती हुई आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थितियों को ध्यान में रखकर करना होगा।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् से ही विकास हेतु विभिन्न कार्यक्रम अपनाये गये हैं। 1950 के दशक में सामुदायिक विकास कार्यक्रम, इस दशक के अन्त में रेगिस्तान क्षेत्र विकास कार्यक्रम तथा इसके पश्चात् कार्य के बदले अनाज एवं कमाण्ड क्षेत्र का सर्वांगीण विकास करना रहा है। इनके अतिरिक्त लघु कृषि विकास अभिकरण, सीमान्त कृषि विकास अभिकरण जैसे विशिष्ट कार्यक्रम भी शुरू किये गये हैं। वर्ष 1976 में लघु एवं सीमान्त कृषक एवं कृषि श्रमिकों को एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत लाया गया जिसमें न केवल लघु एवं सीमान्त कृषक, कृषि श्रमिक, ग्रामीण दस्तकारों को शामिल

किया गया बल्कि गरीबी की रेखा के नीचे जीवनयापन करने वालों को भी शामिल किया गया । रोजगार के अवसरों को सृजन करने हेतु 'राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम' एवं ग्रामीण भूमिहीन श्रमिकों के रोजगार गारण्टी कार्यक्रम शुरू किये गये।

''ग्रामीण'' शब्द का अर्थ है ''ग्रामों'' में रहने वाली जनता''। ग्राम शब्द कहने में जितना सरल प्रतीत होता है, उसकी परिभाषा उतनी ही मतवैभिन्नतापूर्ण बन चुकी है। वैज्ञानिक प्रगति एवं यातायात तथा संचार के नित्य नए आविष्कारों ने विश्व समाज में परिवर्तनशीलता की गति को अत्यन्त ही तीव्र कर दिया है। औद्योगीकरण, नगरीकरण एवं वाणिज्यीकरण को ही विकास का प्रतिमान मान लेने के कारण वर्तमान में शहर, नगर, कस्बा एवं ग्राम शब्दों में किसी विशेष गुण के आधार पर पारिभाषिक विशिष्टता प्रतिपादित करना अत्यन्त ही कठिन कार्य है, क्योंकि वैज्ञानिक प्रगति एवं यातायात तथा संचार के साधनों के द्रुत विकास की पहुँच प्रत्येक स्थल पर हो जाने के कारण इनमें से एक–दूसरे के पारस्परिक सम्बन्ध अत्यन्त ही घनिष्ठ होते जा रहे हैं। यही कारण है, कि विद्वानों ने ग्राम शब्द की स्पष्ट परिभाषा प्रदान करने के स्थान पर गाँव का एक खाका या रुपरेखा मात्र प्रस्तुत की है। ''पी. के. '' महोदय ने ग्रामीण समुदाय को, परस्पर सम्बन्धित या असम्बन्धित व्यक्तियों का एक ऐसा समूह'' माना है जो कि एक परिवार से आकार में बड़ा होता है, जिसके अन्तर्गत पास–पास बने अनेक मकान एवं खेत होते हैं तथा इसके साथ ही साथ ऐसे अनेक चारागाह या बेकार जमीन होती है, जिस पर कि वहाँ के निवासी अपने पशुओं को चराते हैं तथा 'एक निश्चित सीमा तक गाँव या जमीन हमारी है' यह भावना भी यहाँ के लोगों में स्पष्ट होती है।

इसी प्रकार सिम्से ने भी स्पष्ट किया है कि गाँव शब्द का प्रयोग सामान्यतः कृषक बस्तियों के लिए किया जाता है। **डॉ. मुकर्जी** ने इसे और भी स्पष्ट रूप से परिभाषित करते हुए कहा है कि, गाँव वह समुदाय है जहाँ पर कुछ सापेक्षिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक समानता, औपचारिकता, प्राथमिक समूहों की प्रधानता, जनसंख्या का कम घनत्व एवं कृषि ही मुख्य व्यवसाय हो।

''प्राचीन ग्रन्थों में ग्राम'' की उत्पत्ति के सम्बन्ध में जो दस्तावेज प्राप्त होते हैं, उनसे यह स्पष्ट होता है कि यह शब्द संस्कृत से हिन्दी में आया है, जिसका तात्पर्य **वाइड मैक्डोनल संस्कृत शब्दकोश** के अनुसार, जातिगत वंशागत समुदाय या मण्डली है। आर्यों के प्राचीन संगठनों को ''जन'' कहा जाता था जो प्रायः अवस्थित एवं किसी भू–भाग के आधिपत्य से विहीन थे। प्रत्येक जन के भी अनेक विभाग थे, जिनको ''ग्राम'' कहा जाता था तथा जिसका तात्पर्य समुदाय था। भारत में प्रवेश के पश्चात् जन के सदस्यों का कोई समूह या समुदाय (ग्राम) किसी निश्चित स्थल पर अवस्थित हो जाने के पश्चात ''ग्राम'' के नाम से पुकारा जाने लगा था। वैदिक काल में इन जनपदों (राष्ट्रों) में ''पुर'' और ''ग्राम'' नामक दो इकाईयाँ पाई जातीं थी। जनपद की राजधानी को पुर कहते थे, जिसे

दुर्ग के रूप में बनाया जाता था। जनपद के सम्भ्रान्त वर्ग के लोग, शिल्पी तथा व्यापारी ''पुर'' में निवास करते थे तथा किसान देहाती क्षेत्रों में, जिनकी बस्तियों को ही ''ग्राम'' कहा जाता था। उस समय जनपद में ग्रामों का महत्वपूर्ण स्थान होने के कारण उसका मुखिया सभा एवं समितियों में भाग लेता था। वैदिक साहित्य में अनेक स्थलों पर ग्रामों का उल्लेख पाया जाता है। ऋगवेद में ''अग्नि देवता'' को ग्रामों का अविता पुरोहित कहा गया है। एक अन्य स्थल पर आकाश, जंगल एवं ग्राम में रहने वाले पशुओं को यज्ञ से उत्पन्न माना गया है। यजुर्वेद में ''ग्राम'' में किए गए पाप से मुक्ति की प्रार्थना की गयी है। अथर्ववेद में ग्राम में प्रवेश पाये हुए पिशाच, स्तेन (चोर) आदि के विनाश की बात कही गयी है। इस प्रकार वेदों में इस शब्द का प्रयोग ''सुरक्षित किला'' अथवा ''आरक्षित आवास स्थल'' के अर्थों में किया गया है, जहाँ रात्रि में पशु भी रखे जाते थे अथवा वह स्थल जहाँ पर वाह्य आक्रमणों से मुक्ति प्राप्त हो सके इत्यादि किया गया है। वैदिक युग के ग्रामों में स्तेन (चोर) पिचाश (रोगों को उत्पन्न करने वाले कृमि) आदि का भय बना रहता था।

हिन्दी में ''गाँव–ग्राम'' और पंजाबी में ''गाँव–गिरांव'' भी ग्राम शब्द के ही प्रान्तीय भाषाई पर्याप्त हैं। अरबी के शब्द ''मौजा'' का भी प्रयोग इसी अर्थ में किया जाता है, जो कि समस्त भारत के अदालती भाषा के रूप में प्रचलित हो गया था। ''मौजा'' से निःसरित है, जिसका अर्थ **जान्सन शब्दकोश** के अनुसार ''भवनों का निर्माण अथवा दिवारों की पुताई'' से लगाया गया है। फारसी भाषा में डिह शब्द को भी ''ग्राम'' के ही अर्थों में प्रयोग किया जाता है। द्रवेणियन भारतीय भाषाओं में इसके लिए ''उर'' शब्द का प्रयोग किया जाता है। जिसका तात्पर्य भी एक सुरक्षित स्थल होता है। गाँव के किसी छोटे भाग के लिए दक्षिण भारत में उपग्रामम् तथा ''कुप्पम'' और उत्तर भारत में ''धोक'', ''मजारा'' तथा ''पुरवा'' इत्यादि नाम प्रयुक्त किये जाते हैं। भारतीय ग्रामों के सन्दर्भ में प्रशासनिक ऐतिहासिक विवेचना से यह स्पष्ट होता है कि भारत भूमि ग्रामों के कारण ही कृषि उत्पादन की धनी, यज्ञीय, नैतिक संस्कृति की वाहक एवं मार्ग–दर्शक रही है। शनैः शनैः विदेशियों के आगमन ने एवं उनकी स्वार्थ प्रिय, कुटिल नीतियों ने हमारे वैदिक समाज की कमशः अर्थ, धर्म एवं राजनीति का खुलकर दोहन और विघटन किया, जिसके फलस्वरूप सुख–समृद्धिवान भारतीय समाज अज्ञान, अभाव और अशक्तिपूर्ण जीवन जीने के लिए विवश सा हो गया। ऐसे मजबूर और विवश भारतीय समाज को एक अन्तराल के बाद स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। ऐसे मजबूर और विवश भारतीय समाज को एक अन्तराल के बाद स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। अतः पुनः भारतीय समाज ने अपने राम–राज्य की अवधारणा को महात्मा गाँधी, सन्त बिनोवा, जैसे युग पुरूषों के मार्गदर्शन में प्राप्त करने का संकल्प लिया। जिसका शुभारम्भ 26 जनवरी 1950 को भारत को एक गणतन्त्र घोषित करके एवं उसे निश्चित निम्नानुसार उद्देश्य प्राप्ति की दिशा में अग्रसरित किया गया।

इसी प्रकार का ग्राम नगर तथा कस्बा के सम्बन्ध में भारत सरकर द्वारा निर्धारित मानक जिससे यहाँ के "शसकीय नौकरशाही" अनुप्राणित होती है, दृष्टव्य है। भारत सरकार द्वारा कस्बा एवं शहर की परिभाषा प्रस्तुत करने के उपरान्त नकारात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए इनसे भिन्न इकाइयों को ग्राम स्वीकार कर लिया गया है। कस्बाः (क) नगर पालिका, नगर निगम, छावनी बोर्ड या अधिसूचित कस्बा, क्षेत्र समिति आदि सहित सभी स्थान इसके अन्तर्गत रखे जा सकते हैं।

(ख) इसके अतिरिक्त निम्नलिखित अन्य विशेषताएँ भी आवश्यक हैं–

1. कम से कम 5000 की जनसंख्या वाली इकाई,

2. गैर कृषि कार्य में लगे पुरुषों की संख्या कम से कम 75 प्रतिशत हो,

3. जनसंख्या धनत्व कम से कम 400 व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर या 1000 व्यक्ति प्रति वर्ग मील हो।

शहर–एक लाख से अधिक जनसंख्या वाली नगरीय इकाई या नगरीय समूह को इसके अन्तर्गत रखा जाता है। जिसकी निम्नलिखित विशेषताएँ हों–

(क) संलग्न वाह्य विकास के साथ ऐसा शहर जिसका कुछ भाग सर्वाधिक सीमा के बाहर लेकिन सीमा से लगे या गाँवों की सीमा के भीतर हों,

(ख) समस्त वाह्य विकास वाला एक कस्बा या वाह्य विकास सहित दो या दो से अधिक कस्बा।

उपर्युक्त शासकीय तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि गॉव एक ऐसी इकाई है, जिसकी जनसंख्या 5000 से अधिक न हो तथा जिसके 25 प्रतिशत से अधिक जनता के जीवकोपार्जन का साधन कृषि हो एवं जनसंख्या का घनत्व 400 व्यक्ति प्रति किलोमीटर से कम हो। इसी ग्राम शब्द से ग्रामीण विशेषण का निर्माण होता है, जिसका तात्पर्य देहातों से सम्बन्धित या देहातों से सम्बन्धित कार्य रखने वाला से लगाया जाता है। इस "ग्राम" से सम्बद्ध प्रशासन को ही ग्रामीण प्रशासन कहा जाता है, किन्तु प्रशासन शब्द का भी प्रयोग अनेक अर्थों में किया जाता है। अतः यहाँ पर उसका वास्तविक एवं समीचीन तात्पर्य निश्चित करना अपरिहार्य है।

"ग्रामीण" शब्द एक विशेषण है जिसका विशेष्य "विकास" है। विकास के सम्बन्ध में पिछले अध्यायों में विस्तार से चर्चा हो चुकी है। उससे स्पष्ट है ग्रामीण विकास गाँवों में ऐसा वांछित सकारात्मक परिवर्तन है, जो सामाजिक न्याय एवं वर्तमान, भूत तथा भविष्य की आवश्यकताओं के परस्पर पूरकता के सिद्धान्त पर उन्हें अग्रसारित कर सके।

ग्रामीण विकास का अर्थ

विकासशील देशों में ग्रामीण विकास का अर्थ उनके आधारभूत आवश्यकता की पूर्ति के लिये चलाये गये कार्यक्रम को क्रियान्वित कर विकास की मुख्य धारा में जोड़ना है।

समाज का वह समूह जो सामाजिक, आर्थिक एवं सभ्यता में पिछड़ा है,उसके उत्थान के लिये किया गया कार्य ग्रामीण विकास है। मनुष्यों की कुछ आधारभूत आवश्यकताएँ हैं जिसको प्राप्त करने के लिये वह सभी प्रयास करता है; जैसे–रोटी, कपड़ा, मकान आदि। जिसे प्राप्त कर वह अपना जीवन स्तर ऊँचा उठाता है। इन आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति ही विकास कहलाती है। मनुष्य जिस समाज में रहता है उसमें अपनी आजादी तथा सम्मान बनाये रखते हुए गुणात्मक एवं परिणात्मक विकास ही–ग्रामीण विकास है।

उद्देश्य

ग्रामीण विकास का मुख्य उद्देश्य निम्नांकित समस्यायों का समाधान करना है–

1. आदानों को उपलब्ध कराना।
2. वितरण की समुचित व्यवस्था।
3. समाज में रोटी, कपड़ा, मकान, स्वास्थ्य एवं सभ्यता का विकास करना।
4. ग्रामीण जनता में आत्म-सम्मान विकसित करना।
5. रोजगार के साधन उपलब्ध कराना।
6. क्रय क्षमता का विकास करना।
7. जीवन स्तर ऊँचा उठाना।
8. सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों का विकास करना।
9. बेरोजगारी एवं अर्द्ध–बेरोजगारी को कम करना।
10. ग्रामीण जनता की आय बढ़ाना।
11. स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता एवं सहायता प्रदान कराना।
12. स्वच्छ जल उपलब्ध कराना।
13. संचार के साधनों द्वारा मुख्य धारा में जोड़ना।

परिभाषा

विश्व बैंक के अनुसार

"वह व्यूह रचना जिससे ग्रामीण जनता का सामाजिक एवं आर्थिक विकास हो, जो गाँवों में निवास करते हैं।"

अतः उपरोक्त परिभाषा के आधार पर हम कह सकते हैं कि "ग्रामीण विकास वह क्रिया या विधि है जिससे ग्रामीण गरीब जनता के विकास के लिये आदानों का समुचित व्यवस्थापन करना है।" अर्थात् सामाजिक, आर्थिक, भौतिक एवं चहुँमुखी विकास सम्भव करना है। "ग्रामीण विकास में आर्थिक विचारों और नियमों विशेषकर राजनीतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक के परिष्कृत नियमों को गाँवों के विकास में प्रयोग में लाया जाता है।"

ग्रामीण विकास उन सिद्धान्तों का ज्ञान कराता है जो ग्रामीण समस्याओं को शासित कर अपने लिये सम्पूर्ण उत्कृष्ट ग्रामीण समाज की स्थापना कर सके।

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ग्रामीण विकास वह क्रिया एवं विज्ञान है जिसमें ग्रामीण समस्याओं के मूल सिद्धान्त एवं तरीकों को ग्रामीण उत्थान के लिये प्रयोग में लाया जाता है।

ग्रामीण विकास की विशेषताएँ

1. **ग्रामीण समाज अनेक क्रियाओं का केन्द्र**–ग्रामीण समाज घनत्व के आधार पर सूक्ष्म है पर अनेक आर्थिक, सामाजिक, वैधानिक क्रियाओं का केन्द्र है।

2. **सामान्य मनुष्य का अध्ययन**–ग्रामीण समाज में विभिन्न प्रकार के मनुष्यों के क्रियाकलाप का अध्ययन किया जाता है।

3. **आर्थिक क्रियाओं का क्षेत्र**–ग्रामीण प्रधान देश होने के कारण देश के अनेक आर्थिक क्रियाएँ इससे सम्बन्ध रखती हैं।

4. **वास्तविक समाज का अध्ययन**–ग्रामीण समाज भारत की संस्कृति की इकाई है। अतएव यहाँ की वास्तविक समाज का अध्ययन होता है।

5. **अनार्थिक क्रियाओं का केन्द्र**–ग्रामीण समाज अनेक प्रकार की सामाजिक, धार्मिक, मनोवैज्ञानिक क्रियाओं का क्षेत्र है।

ग्रामीण विकास का क्षेत्र

ग्रामीण विकास का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। सभी ग्रामीण समस्याओं को एकीकृत कर बनाया गया क्षेत्र है। इन व्यापक क्षेत्रों में मुख्य निम्न हैं–

1. **ग्रामीण विकास की विषय सामग्री**–ग्रामीण क्षेत्र की सभी समस्याओं, उत्पादन, उपयोग, विनमय, सामाजिक राजस्व, मनोवैज्ञानिक एवं धार्मिक का अध्ययन किया जाता है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि ग्रामीण विकास के अन्तर्गत कृषक क्या पैदा करे, क्या रोजगार अपनाये, कितना पैदा करे, किन-किन वस्तुओं का उपयोग करे तथा क्या सामाजिक, मनोवैज्ञानिक पद्धति अपनाये ? आदि का अध्ययन किया जाता है।

2. **उपभोग का विषय**–उपभोग में कृषकों की आय तथा उनके पारिवारिक व्यय से सम्बन्ध रहता है। कृषक खाद्यान्न एवं कुटीर उद्योगों की वस्तुओं का उत्पादन करता है तथा साथ-ही-साथ उन वस्तुओं का उपयोग भी करता है। वह इस बात का प्रयास करता है कि किस प्रकार अधिकतम सन्तुष्टि को प्राप्त कर अपना जीवन स्तर सुधारे।

3. **उत्पादन का क्षेत्र**–गाँव अनेक प्रकार के उत्पादन; जैसे – अनाज, कुक्कुट, रेशम, दूध, फल, सब्जी, एवं कुटीर उत्पादनों का क्षेत्र है। इन उत्पादनों में श्रम, पूँजी, साहस, भूमि संगठन एवं सामाजिक रीति-रिवाजों का आदर्श संयोग होता है।

4. वितरण का क्षेत्र–ग्रामीण समाज में उत्पादन की विवेचना की जाती है। अधिकतर लोग आर्थिक रूप से पिछड़े हुए हैं। श्रम की मजदूरी, पूँजी का ब्याज आदि वितरण होता है।

5. विनिमय का क्षेत्र–ग्रामीण समाज में अनेक प्रकार का विनिमय होता है। इसमें कृषकों को ज्ञान कराया जाता है कि वे अपने द्वारा उत्पादित वस्तुओं को कितना कहाँ, कब बेचें जिससे उसका उचित लाभ मिल सके एवं जीवन स्तर सुधार सके।

6. नियोजन तथा नीति निर्माण का क्षेत्र–गरीबी रेखा के ऊपर उठने के लिये अनेक प्रकार के नियोजन तथा नीति की आवश्यकता होती है, जिसका अध्ययन एवं प्रयोग किया जाता है।

7. ग्रामीण समुदाय का अध्ययन–ग्रामीण विकास ग्रामीण समुदाय का हर दृष्टिकोण से अध्ययन करता है; जैसे–आकार, घनत्व इत्यादि।

8. ग्रामीण सामाजिक संगठन–यह ग्रामीण सामाजिक संगठन परिवार, विवाह, नातेदारी, मित्र मण्डली आदि संगठन का अध्ययन करता है।

9. ग्रामीण प्रक्रिया तथा पुनर्निर्माण में।

10. सामाजिक परिवर्तन में।

11. सामाजिक चेतना से होने वाले विकास कार्यक्रम में।

12. आधारभूत समस्याओं को एकगत करने में।

13. ग्रामीण नेता के निर्माण में।

14. विज्ञान तथ प्रोद्यौगिकी में जिससे उत्पादन का कार्य हो।

15. कृषि तथा दुग्ध उत्पादन द्वारा ।

16. कृषि, मकान, विधान के प्रबन्ध।

17. रोजगार के साधनों का विकास ।

18. ग्रामीण कुटीर उद्योग के विकास कार्यक्रम ।

19. विपणन कार्य का प्रबन्ध एवं नियोजन।

20. ग्रामीण सभ्यता के संरक्षण कार्य।

उपर्युक्त ग्रामीण विकास की समस्याओं को दूर करने के लिये सरकारी नीतियों एवं ग्रामीण विकास के लिये कई कार्यक्रम बनाये हैं, जिनमें निम्नलिखित कार्यक्रम अभी तक बनाये गये हैं–

सर्वप्रथम, ग्रामीण विकास के लिये सामुदायिक विकास कार्यक्रम, ग्रामीण विकास में सभी कार्यक्रमों को विकास का आधार प्रदान करता है और पंचायत राज संस्थाओं के माध्यम से ये सभी कार्यक्रम गांव के गरीब तक पहुंचाने की व्यवस्था की गयी है। पंचायती राज संस्थाएं ग्रामीण जनता तथा सरकारी आयामों के बीच कड़ी का काम करती हैं। इसके पश्चात् कई कार्यक्रम प्रारम्भ किये गये, जिनमे छोटे कृषक विकास एजेन्सी, सीमान्त

कृषक एवं भूमिहीन कृषक एजेन्सी, अकाल राहत क्षेत्रीय कार्यक्रम, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम एवं बीस सूत्री कार्यक्रम आदि बनाये गये। इनके माध्यम से ग्रामीण विकास का स्वप्न देखा गया। इन कार्यक्रमों के अतिरिक्त भी कुछ राज्य सरकारें तथा भारत सरकार के द्वारा अलग विकास के कार्यक्रम भी बनाये गये हैं; जैसे—अन्त्योदय योजना, काम के बदले अनाज योजना, स्वरोजगार की दृष्टि से ग्रामीण युवाओं का प्रशिक्षण, ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारण्टी कार्यक्रम, समन्वित ग्रामीण शक्ति नियोजन कार्यक्रम ।

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को लागू करने में प्रशासनिक मशीनरी का महत्वपूर्ण हाथ होता है। इनके द्वारा विभिन्न प्रकार की कमियाँ छोड़ दी जाती हैं। जिसके कारण चाहे कोई भी कार्यक्रम हो वह पूर्ण सफल नहीं हो पाता है। इन कार्यक्रमों में जिन व्यक्तियों को लाभान्वित किया जाता है, उनकी सही पहचान होना जरूरी है। जो कर्मचारी चाहे, विकास अधिकारी, तहसीलदारी, डॉक्टर, बैंक मैनेजर, ग्राम सेवक हो या गांव का सरपंच आदि। इनके माध्यम से व्यक्ति की पहचान मात्र खाना-पूर्ति किये जाने के कारण लाभार्थियों की सही पहचान नहीं हो पाती है। इसका परिणाम यह होता है कि कार्यक्रम सही व्यक्ति तक नहीं पहुँच पाता है।

ग्रामीण विकास की सीमाएँ

1. अधिकतर जनसंख्या अनपढ़ है इसलिये कोई भी कार्य शीघ्र ही क्रियान्वित नहीं किया जा सकता ।
2. प्राकृतिक साधनों पर अधिक निर्भर रहना पड़ता है।
3. यहाँ पर अधिकांश उद्योग प्रकृति पर निर्भर हैं।
4. उनके द्वारा उत्पादित वस्तुएँ अधिकतर नाशवान होती हैं।
5. संगठिन न होने के कारण उत्पादन में उनकी मात्रा थोड़ी होती है।
6. यातायात की कमी होने के कारण उत्पादन में उनकी मात्रा थोड़ी होती है।
7. ग्रामीण जनता के क्रिया-कलाप स्थनीय मान्यताओं के अनुरूप होते हैं।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था में संक्रमण

भारतीय ग्राम तो मूलतः आज भी प्रायः प्राथमिक अवस्था में ही हैं। छोटे-छोटे खेत, मानसून पर निर्भर, पुराने सस्ते उपकरण का कृषि कार्य में प्रयोग किया जाता है। तब भी हम देखते हैं कि कुछ परिवर्तन स्पष्ट रूप से हो रहा है; इस परिवर्तन के पांच स्वरूप हैं—

1. कृषि का व्यापारीकरण—18वीं व 19वीं शताब्दी की औद्योगिक क्रान्ति, भारत में रेलों तथा सड़कों का निर्माण। 1869 ई. में स्वेज नहर के खुल जाने के कारण व्यापारीकरण शुरू हो गया। भारत में कृषि का व्यापार स्थानीय था। बड़े-बड़े सिंचाई के

साधनों का निर्माण। बंजर भूमि में खेती होने लगी। व्यापारिक फसलें उगने लगीं। रेलों तथा बन्दरगाहों के बनने से उपज सुदूर गांवों से एकत्रित होकर विदेश जाने लगी। विभिन्न प्रान्तों में विशेष प्रकार की फसलों का विशेषीकरण हुआ। पंजाब--गेहूँ, बंगाल--चावल, यू. पी.--गन्ना इत्यादि। वस्तु विनमय के स्थान पर द्रव्य विनमय होने लगा। मजदूरी, लगाान इत्यादि रुपयों के रूप में दी जाने लगी।

2. भूमि की मालगुजारी का नियत होना--19वीं शताब्दी के अन्त तक सम्पूर्ण भारत में समुचित व्यवस्था कर दी गयी तथा भारतीय विभिन्न भागों में स्थायी महावारी, जमींदारी तथा रैय्यतवाड़ी रैयतवही प्रबन्ध कर दिये गये।

3. भूमि का अधिक छोटे--छोटे टुकड़ों का दूर--दूर विभक्त हो जाना--19वीं शताब्दी में भारत की जनसंख्या बढ़ी। उधर इंग्लैण्ड का और औद्योगीकरण हुआ भारत के प्राचीन गृह उद्योग नष्ट हुए। भूमि पर जनसंख्या का भार बढ़ा तथा भूमि की माँग बढ़ी और छोटे-छोटे टुकड़े हो गये।

4. कृषि श्रमिक की मजदूरी में वृद्धि तथा उनकी पूर्ति का अभाव--भूमि वितरण की व्यवस्था ने जनसंख्या के विशाल भाग का कृषि पर मजदूरी करने के लिये विवश कर दिया। गत कुछ वर्षों से श्रमिकों की अवस्था के वेतन में सुधार हुआ।

5. भूमि का वास्तविक किसानों के हाथ से निकाल कर महाजनों इत्यादि के हाथ में आ जाना । ऐसा ऋणात्तता तथा गिरवी पद्धति किसान का अशिक्षित होना आदि कारणों से सम्भव हुआ।

आजादी के उपरान्त ग्रामीण विकास

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत के विकास को गति प्रदान करने हेतु योजना आयोग का गठन किया गया। भारत में युग के प्रारम्भ से ही सम्राज्यवादी समाज एवं ग्रामीण विकास पर बल देने का निर्णय लिया गया था। किन्तु कुछ ही समय पश्चात् यह पाया गया कि भारतीय खेतिहर समुदाय परम्परागत अर्थतंत्र से औद्योगीकरण, नगरीकरण और शहरीकरण की दिशा में प्रयासरत किये गए हैं। इन योजनाओं को लागू करने के बावजूद बेरोजगारी बढ़ती गयी,, आय की असमानता भी बढ़ी,, अवैद्य एवं काले धन में वृद्धि के साथ ही आर्थिक शक्तियों का संकेन्द्रण निरन्तर जारी रहा। सार्वजनिक धन का अधिकांश भाग निजी क्षेत्रों, पूँजीपतियों, उद्योगपतियों के हाथ में केन्द्रित हो गया जिससे समाज दो वर्गों एवं शोसित में बट गया।

1. योजना आयोग का गठन।
2. 1951 में प्रथम पंचवर्षीय योजना का प्रभाव खेती पर पड़ा । 1956 में द्वितीय पंचवर्षीय योजना में 4600 करोड़ रुपये व्यय किये गये।
3. सिंचाई सुधार।
4. चकबन्दी, भू-दान आन्दोलन ।

5. सहकारी आधार पर खेती।
6. जमींदार एवं मध्यस्थों का अधिकार समाप्त।
7. भू-संरक्षण, वन उत्पत्ति, वृक्षारोपण ।
8. 1952 सामुदायिक विकास योजना।
9. उन्नतशील बीज एवं खाद का प्रयोग।
10. मजदूरों की स्थिति में सुधार, भूमिहीनों को भूमि वितरण, न्यूनतम मजदूरी।
11. जिला सघन कृषि कार्यक्रम (I.A.D.P. Intensive Agricultural District Progomme)

पैकेज प्रोग्रामर (Package Programme) प्रारम्भ में 7 प्रोग्राम राज्यों में चलाया गया, 1964–65 में 514 जिलों में चलाया गया जिसमें निम्नलिखित बातों पर ध्यान दिया गया–

(1) (a) सिंचाई सुविधा, (b) बाढ़ से बचाव, (c) जल निकास, (d) भूमि संरक्षण, (e) सहकारी समितियों तथा पंचायतों का अच्छा कार्य, (f) उर्वरक एवं खाद की सुविधा, (g) उन्नतशील बीज एवं यन्त्र की सुविधा, (h) सिंचाई सुविधा, (i) रोग तथा कीटों की रोकथाम, (j) खाद्यान्नों का उत्पादन बढ़ा ।

(2) अधिक पैदावार होने वाली जातियों का कार्यक्रम (High Yielding Varities Programme) 1965-66 चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में 25 मिलयन हेक्टअर में शुरू किया गया।

(3) **हरित क्रान्ति** (Green Revolution)

(i) Intensive Agricultural Development, (ii) High Yielding Variety Programme, (iii) Improved Variety of Seeds - उन्नत बीज के लिये 400 कृषि फार्म खोले गये।

(ii) 1971–72 इनका प्रयोग 26.50 लाख टन बढ़ा दिया गया।

(iii) मृदा परीक्षण

(iv) कृषि विश्वविद्यालय

(v) लघु सिचाई योजनाएँ (Minor Irrigation Programme)

(vi) बहु–फसली खेती

(vii) पौध संरक्षण 1971-72 में 58 मि. हे. में चलाया गया ।

(viii) मृदा संरक्षण।

(ix) शुष्क कृषि।

ग्रामीण विकास कार्यक्रम एवं योजनाएँ

इन कार्यक्रमों का प्रमुख उद्देश्य ग्रामीणों में आत्मनिर्भरता तथा जन-सहभागिता की वृद्धि करना था परन्तु समय व्यतीत होने के साथ ही यह अनुभव किया जाने लगा

कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम जनता का कार्यक्रम न होकर एक सरकारी कार्यक्रम बन गया है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत ग्रामीणों से जिस सहयोग की अपेक्षा की गई थी, वह भी प्राप्त नहीं हो सका। इस स्थिति में अनेक मूल्यांकन समितियों ने ये सुझाव दिये हैं कि यह कार्यक्रम जन-साधारण का कार्यक्रम तभी बन सकता है, जब इसको जनता के प्रतिनिधियों को सौंप दिया जाय। सन् 1955 में केन्द्रीय मूल्यांकन समिति ने यह स्पष्ट किया कि सामुदायिक विकास योजना द्वारा ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित कुछ भौतिक लक्ष्यों को अवश्य प्राप्त कर लिया गया है लेकिन यह जन-साधारण का कार्यक्रम बनने में असफल रहा है। इस कार्यक्रम को जनता का कार्यक्रम बनाने एवं इसमें ग्रामीणों का सक्रिय सहयोग प्राप्त करने के लिए 1957 में **'बलवन्त राय मेहता अध्ययन समिति'** ने अपने प्रतिवेदन में यह सुझाव दिया कि ग्राम विकास से सम्बन्धित योजना बनाने और उन्हें क्रियान्वित करने के लिए प्रशासनिक कार्यों का विकेन्द्रीकरण किया जाय तथा स्वशासन के अधिकार जन प्रतिनिधियों को सौंप दिये जायें। इस समिति के प्रतिवेदन की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि इसमें पंचायत राज-व्यवस्था की स्थापना के लिए लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया को अनिवार्य माना गया। इस प्रकार पंचायत राजव्यवस्था के लिए बलवन्त राज्य मेहता समिति ने जिस योजना को प्रस्तुत किया था उसी को **'लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण'** के नाम से जानते हैं। 1957 में प्रस्तुत इस योजना को कार्य रूप देने के लिए 12 जनवरी, 1958 में राष्ट्रीय विकास समिति द्वारा इसे स्वीकार कर लिया गया। इसके पश्चात् सामुदायिक विकास मन्त्रालय ने राज्य सरकारों को ये निर्देश दिये कि वे अपने राज्य की विशेषताओं का ध्यान रखते हेतु पंचायत राज-व्यवस्था की योजना को लागू करें। इस प्रकार भारत में लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीयकरण एक साधन के रूप में पंचायत राज-व्यवस्था का आरम्भ 1959 में हुआ।

भारत में ग्रामीण विकास की योजनाएँ आजादी के पूर्व से चलाई जा रही हैं। इस कार्यक्रम से भारत के गरीब ग्रामीण जनता का स्तर ऊँचा उठा तथा उनमें एक नई चेतना का संचार हुआ कुछ ग्रामीण विकास योजनाएँ निम्नलिखित हैं–

नीलोखेरी योजना कार्यक्रम

यह योजना मुख्य रूप से पाकिस्तान में 7000 व्यक्तियों से लिए आरम्भ किया गया। किन्तु बाद में 100 ग्रामों तक फैला दिया जिसमें गाँव में प्रशिक्षण केन्द्र बना दिया गया। 1948 में कुरूक्षेत्र की 1100 एकड़ भूमि पर स्थानान्तरित कर दिया । इस योजना के संस्थापक **श्री एस. के. डे** थे।

उद्देश्य

1. ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के व्यक्तियों के जीवन से संबंधित आवश्यक आवश्यकताओं को पूरा करना।

2. बेकार पड़ी भूमि को कृषि योग्य बनाना।
3. विभिन्न व्यवसायों का प्रशिक्षण देना।
4. शिक्षा तथा स्वास्थ्य सुविधाएँ उपलब्ध कराना।
5. गरीब जनता की आर्थिक सहायता तथा कृषि विकास करना।

कार्यक्रम

1. सन् 1949–50 में गृह निर्माण, बिजली तथा मशीनों की मरम्मत, क्रय केन्द्र, वर्कशाप, पोलीटेक्निक, इंजीनियरिंग स्कूल, अस्पताल, शिक्षा स्कूल आदि जिसे बाद में प्रशिक्षण केन्द्र बना दिया गया।
2. 750 एकड़ भूमि को खेती योग्य बनाया गया।
3. फल तथा सब्जियों को उत्पादन बढ़ाया गया।
4. स्कूल के छात्रों को कृषि कार्य अनिवार्य बना दिया गया।
5 स्कूली शिक्षा की व्यवस्था, में बढ़ईगीरी, लुहारगीरी, धातु की चादरें, बिजली का काम, छपाई, मशीन, ट्रैक्टर, रेडियो में प्रशिक्षण की व्यवस्था आदि।
6. स्कूल में गरीब छात्रों को सहायता प्रदान करना।
7. सांस्कृतिक कार्यक्रम की सुविधाओं को प्रदान करना।
8. उत्पादन में छात्रों की हिस्सेदारी।
9. गाँव में कृषि क्षेत्र के विकास के लिये डेरी फार्म, मुर्गी पालन, सूअर पालन, उद्यान, हड्डी का चूर्ण, पोटेशियम नाइट्रेट, बेकरी आटा व तेल मिल सभी प्रकार की उत्पादक इकाइयाँ कार्य करती थीं।

इस प्रकार यह एक महत्वपूर्ण एवं चर्चित मॉडल के रूप में विकसित हुआ।

फिरका विकास योजना

यह योजना 1946 में 34 फिरका में मद्रास सरकार द्वारा आरम्भ की गयी तथा 1950 में 50 फिरकाओं को और सम्मिलित किया गया। फिरका क्षेत्र का चुनाव पिछड़ेपन के आधार पर किया जाता था। 5–10 गाँव मिलाकर एक फिरका बनाया गया। इसका मुख्य स्वप्न गाँधीजी के " ग्राम स्वराज" पर पहुंचकर न केवल शिक्षात्मक, आर्थिक, सफाई तथा अन्य विकासशील परिवर्तन लाना बल्कि आत्म विश्वास और आत्म निर्भरता लाना था।

उद्देश्य

1. पंचायत का विकास।
2. सहकारी समिति का विकास।
3. संचार साधनों का विकास।

4. कृषि तथ पशुपालन उत्पादन में आत्मनिर्भरता।
5. खादी तथा घरेलू धंधों का विकास।
6. स्वास्थ्य एवं सफाई सुविधाएँ विकसित करना।
7. ग्रामीण समस्याओं को सुलझाना।

कार्यक्रम

1. ग्रामीण सांस्कृतिक विकास।
2. कृषि तथा पशुपालन का विकास।
3. खादी उद्योगों का विकास ।
4. स्वच्छ पीने के पानी की व्यवस्था।
5. ग्रामीण संचार साधनों के विकास हेतु प्रशिक्षण ।
6. स्वास्थ्य एवं सफाई कार्यक्रम।

कमियाँ

1. ग्रामीणों की भागीदारी कम थी।
2. कार्य क्षेत्र सीमित था।
3. केन्द्रीय सहायता कम थी।
4. जन सहयोग की भावना नहीं थी।

इटावा अग्रगामी योजना

सन् 1947 में इस कार्यक्रम की शुरूआत **एलबर्ट मेयर** द्वारा की गयी तथा 1948 में महेबा ग्राम (इटावा से 19 किमी. दूर) के केन्द्र मानकर विकसित किया गया जिसमें आस-पास के 97 ग्रामों को चुना गया। मेयर ने भारत में आकर अनुभव किया कि यहाँ के किसान कई वर्ष पुरानी विधियों का प्रयोग कर रहे हैं जिसके कारण खाद्यान्न व्यवस्था ठीक नहीं है। अतः उन्होंने यह विकास कार्यक्रम आरम्भ किया। भारत सरकार के अतिरिक्त अमेरिका के चार सूत्रीय कार्यक्रम से भी आर्थिक सहायता प्राप्त हुई। इसका उद्देश्य चुने हुए ग्रामों का विकास करना नहीं था बल्कि विकासशील क्रियाओं की सफलता को जाँच करना भी था, क्योंकि सभी क्षेत्रों को विकसित किया जा सके। किसानों पर नियंत्रण के लिए उन्हें शिक्षित किया जाये तथा प्रयोग के लिए राजी किया जाये।

उद्देश्य

1. कृषि उत्पादकता में वृद्धि लाना।
2. आत्मविश्वास, सामाजिक प्रगति तथा सहकारिता भावना उत्पन्न करना।

3. सामुदायिक जीवन की भावना विकसित करना।
4. साधनों का उचित उपयोग करने की क्षमता में वृद्धि ।
5. स्वतन्त्रतापूर्वक अपने विकास करने में स्वयं सहायता की भावना विकसित करना।

कार्यक्रम

1. उजाड़ भूमि का सुधार।
2. ऊँची-नीची भूमि की मेढ़बन्दी।
3. कृषि प्रदर्शन ।
4. सामाजिक शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा।
5. युवक तथा महिला मंगल दल का गठन।
6. ग्रामीण उद्योग धन्धे बढ़ाना।
7. उद्यान सम्बन्धी बाग लगाना, सब्जी उत्पादन, किचिन गार्डन तथा गृह वाटिका।
8. पीने के पानी हेतु आदर्श कुओं का निमार्ण करना।
9. बीज, उर्वरक कृषि यन्त्रों, फसल सुरक्षा की पूर्ति करना।

कमियाँ

1. जाति प्रथा तथ रूढ़िवादिता-उच्च जाति बाहुल्य क्षेत्रों में कार्य करना।
2. आर्थिक लालच अधिक दिया गया जिससे मानसिक दृष्टिकोण में परिवर्तन कम हुआ।
3. उद्देश्यों के आधार पर किसानों के विचारों का विश्लेषण और मूल्यांकन नहीं किया गया।

श्री निकेतन

ग्रामीण कल्याण की भावना को लेकर **रवीन्द्रनाथ टैगोर** ने अपना कार्य 1908 में युवक संगठन से प्रारम्भ किया। 1911 में ग्राम के बहुमुखीय विकास को लेकर श्री निकेतन को केन्द्र मानकर रचनात्मक कार्य आरम्भ किये। श्री निकेतन पश्चिम बंगाल के बोलपुर जिले में कलकत्ता से 135 कि.मी. दूर स्थित है। यह कार्यक्रम सबसे पहले जमींदारी वाले गाँव अतराई, रघुरामपुर, रानी नगर, तिलकनगर, संताहार तलारा आदि से आरम्भ किया गया। **श्री इल्हर्ट** नाम के समाजशास्त्री इस कार्य में सहायक हुए। 1921 में ''विश्व भारती'' कल्याण कार्यों को प्रयोगात्मक रूप में विकसित करने की संस्था आरम्भ की, जो इस समय विश्वविद्यालय है।

उद्देश्य

1. ग्रामीण लोगों की समस्याओं का अध्ययन करना ।
2. पशुधन विकास करना।
3. नेतृत्व का विकास लाना ताकि समाज सेवा और बलिदान की भावना विकसित हो।
4. खेती की उन्नतिशील पद्धतियों का विकास करना।
5. ग्राम सफाई तथा प्राथमिक शिक्षा का विकास करना।
6. स्वयं समस्या को सुलझाने की भावना विकसित करना।
7. घरेलू उद्योग धन्धों के विकास में ग्रामीण लोगों की सहायता करना।

कार्यक्रम

1. ग्राम सर्वेक्षण करना ।
2. सफाई अभियान चलाना ।
3. प्रौढ़ शिक्षा जिसमें पढ़ने, लिखने और हिसाब से सम्बन्धी शिक्षा सम्मिलित है, चलाना ।
4. मलेरिया, तपेदिक तथा अन्य छुआछूत सम्बन्धी बीमारियों के प्रति आन्दोलन ।
5. स्काउट संगठन बनाना।
6. बाढ़ और अकाल के समय सहायता कार्य करना।
7. कृषि और पशुधन विकास संबंधी कार्यक्रम चलाना।
8. सहकारी समिति का गठन करना।
9. उद्योग धन्धों के विकास को शिक्षा तथा प्रशिक्षण–टेनरी, योटरी, कार पेण्टर बनाना।

कमियाँ

1. वैज्ञानिक-आर्थिक और सामाजिक अनुसन्धान की कमी थी ।
2. क्षेत्रीय अध्ययन में कार्यकर्ता प्रशिक्षित न होने के कारण असफल रहते थे।
3. इच्छिक कार्यकर्ता की कमी थी।
4. सरकारी सहायता की कमी थी।

गुड़गाँव योजना

1920 में **एफ.एल. ब्रेनो** ने गुड़गाँव योजना (गुड़गाँव जिला जो अब हरियाणा प्रान्त में है) आरम्भ की । यह उस समय डिप्टी कमिश्नर (पंजाब) थे। इन्होंने लिखा है कि एक नयी योजना की आवश्यकता है, जो वस्तुनिष्ठ न होकर आत्मपरक होनी चाहिए। जो आत्म-नियंत्रण बनाने की भावना, पारस्परिक आदर तथा सहयोग और स्वयं सहायता तथा

कठिन परिश्रम से ही संभव है। युद्ध के कारण ग्रामीण लोगों की दयनीय दशा देखकर ये योजना विकसित की।

उद्देश्य

1. ग्रामीण लोगों को पुरानी व्यवस्था से बदलाव लाना।
2. सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक स्वतन्त्रता का विकास करना।
3. ऋण-ग्रस्तता समाप्त करना।
4. भाग्यवादिता को समाप्त करना ।
5. ग्रामीण जीवन की सम्पूर्ण समस्याओं पर कार्य करना; जैसे–कृषि, स्वास्थ्य एवं शिक्षा पर कार्य इत्यादि।

कार्यक्रम

1. सूखी खेती, उन्नतिशील कृषि, पशुपालन तथा चारागाह विकास कार्य करना।
2. सहकारी समिति का संगठन करना
3. कम्पोस्ट खाद, स्वास्थ्य एवं सफाई कार्यक्रम चलाना।
4. सामाजिक सुधार तथा शिक्षा का विकास करना।
5. पारस्परिक सहयोग तथा प्रचार को महत्व देना।
6. दहेज एवं दाह (अन्तिम संस्कार) आदि पर खर्च कम करने की शिक्षा देना जिससे फिजूल खर्च कम किया जा सके।

कमियाँ

1. ग्रामीण संस्कृति को अलग करके प्रगति कार्य किये।
2. नियोजन में ग्रामीण लोगों को सम्मिलत नहीं किया गया।
3. ब्रेनी डिप्टी कमिश्नर थे जिसके कारण दबाव में कार्यक्रम प्रयोग हुए ।
4. कोई स्थायी संगठन नहीं था ।
5. गाँव की प्रशिक्षिक नहीं थे तथा कम वेतन मिलता था ।

मार्थण्डम योजना

केरल राज्य में ग्रामीण कल्याणकारी योजना को 1921 में अमेरिकन कृषि विशेषज्ञ **डा. स्पेन्सर हैच** द्वारा ग्रामीण लोगों में आध्यात्मिक, मानसिक, शारीरिक, सामाजिक और आर्थिक विकास लाने के लिए यह योजना प्रारम्भ की गई। यंगमैन क्रिश्चियन एसोशियेशन संगठन द्वारा इसी की देखरेख में इस योजना में 100 (Y.M.C.A) केन्द्रों द्वारा यह कार्य आरम्भ किया गया। इसके साथ ही चर्च शिशु शिक्षा और शिक्षा कल्याण कार्यों में रुचि लेते थे।

उद्देश्य

1. सामाजिक और आर्थिक विकास लाना।
2. विकास कार्यों में ग्रामीण लोगों का सहभाग प्राप्त करना।
3. मनोरंजन साधनों का विकास करना।
4. लघु उद्योगों हेतु प्रशिक्षण देना।
5. नेतृत्व का विकास तथा राष्ट्रीय भावना पैदा करना।
6. सहकारिता की भावना जागृति करना।

कमियाँ

1. संगठनों में गुटबाजी के कारण विकास वृद्धि समाप्त हो गई।
2. कुशल कार्यकर्ताओं की कमी थी।

सेवाग्राम एवं वर्धा

महात्मा गाँधी ने अपनी पुस्तकें "हिन्द स्वराज" "मेरे सपनों का भारत" तथा "ग्रामस्वराज्य" में यह स्वीकार किया था कि देश का विकास तभी संभव है, जबकि ग्राम स्वावलम्बी बने। इसके लिए सैद्धान्तिक प्रादर्श तो उपरोक्त पुस्तकों में प्रस्तुत किया जा चुका था किन्तु इन्हें व्यवहार में लागू करके परीक्षण करने की आवश्यकता थी। गाँधीजी ने अपने उपरोक्त सपनों को वास्तविक धरातल पर साकार करने के उद्देश्य से प्रयोग करने का निश्चय किया। इसी के चलते 1920 में सेवाग्राम में तथा 1938 में वर्धा में गाँधीजी एक समुन्नत एवं आत्मनिर्भर ग्राम बनाने का प्रयास किया गया जो अन्य ग्रामों के लिए प्रेरणा का स्रोत बने। गाँधीजी के इस प्रयोग से अनुप्राणित होकर अनेक स्वयंसेवियों ने भी यह प्रयोग करना प्रारम्भ किया। इस दृष्टि से यह प्रयोग पूर्णतः सफल रहे।

उद्देश्य

1. सहकारिता का विकास करना।
2. पशुपालन करना।
3. खाद्यान्न तथा कपास में आत्म-निर्भरता लाना।
4. अनिवार्य शिक्षा तथा खेलकूद बढाना।
5. स्वास्थ्य एवं सफाई (स्वयं अपनी), गाँव की, और राष्ट्र की सफाई तथा प्राकृतिक इलाज करना।
6. सामाजिक और आर्थिक समानता लाना।
7. कुटीर उद्योग धंधों का विकास।
8. ग्रामीण पंचायतों का विकास।

कार्यक्रम

1. ग्रामीण आवास।
2. सामुदायिक समानता।
3. प्राकृतिक इलाज।
4. मातृ-भाषा का प्रयोग।
5. नशाबन्दी।
6. छुआछूत समाप्त करना।
7. आर्थिक समानता लाना।
8. सामाजिक समानता और अधिकार।
9. जन-स्वास्थ्य एवं सफाई शिक्षा।
10. स्त्री कल्याण, अधिकार तथा स्वतंन्त्रता।
11. सफाई।
12. पिछड़ी जातियों का उत्थान।
13. प्रौढ़-शिक्षा।
14. ऊनी कम्बल तैयार करना।
15. कागज बनाना।
16. मरे हुए जानवारों का प्रयोग खाद, जूते आदि हेतु।
17. कुटीर उद्योग-हाथ से धान की कुटाई, गुड़ बनाना, तेल निकालना, नीम की खली निकालना, कपड़े आदि बुनना।
18. खादी का प्रयोग।

कमियाँ

1. अन्य विकसित विभागों में सह-सम्बन्ध की कमी।
2. नियोजन तथा संगठन की कमी।
3. अनुसंधान तथा मूल्यांकन की कमी।
4. सेवा, पूर्ति निर्देशन तथा निरीक्षण की कमी।
5. अपर्याप्त तथा अकुशल कार्यकर्ता।
6. उद्देश्य स्पष्ट नहीं थे।
7. सरकारी सहयोग तथा धन की कमी।
8. व्यक्ति प्रेरणा पर अधिकतर कार्यक्रम आधारित थे।

इण्डियन विलेज सर्विस

यह एक मिशन कार्यक्रम है। **डा. डब्ल्यू.एच.विशर** जो इसके निदेशक थे। यह योजना सर्वप्रथम 1945 में विशर, मारहरा टी. मोसर तथा बी. एन. गुप्ता द्वारा अलीगढ

जिले के एक गाँव में आरम्भ की गई थी तथा 1948 में एटा जिले के माहश क्षेत्र के 30ग्रामों में आठ कार्यकर्ताओं के साथ यह, कार्यक्रम चलाया गया।

उद्देश्य

1. योजना ग्रामीण लोगों द्वारा कार्यान्वित करना।
2. स्थानीय नेतृत्व का विकास करना।
3. विकास क्रियाओं के प्रति ग्रामीण लोगों को आकर्षित करना।
4. बिना बाहरी सहायता के ग्रामीण व्यक्तियों द्वारा योजना बनाना।
5. ग्रामीण लोगों को शिक्षा के प्रति आकर्षित करना।

कार्यक्रम

1. मनोरंजन सम्बन्धी कार्यक्रम।
2. उद्योग धन्धों का विकास।
3. रात्रि पाठशालाओं द्वारा सामान्य शिक्षा का विकास।
4. गृह-व्यवस्था हेतु प्रशिक्षण।
5. स्वास्थ्य एवं सफाई कार्यक्रम।
6. व्यावसायिक शिक्षा तथा उन्नत वस्तुओं की आपूर्ति।

कमियाँ

1. सीमित साधन।
2. प्रगति की गति धीमी थी।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम

स्वतन्त्रता के पश्चात् सर्वप्रथम सामुदायिक विकास के रास्ते को चयनित करने का निश्चय किया गया इसके लिए "सामुदायिक विकास कार्यक्रम" एवं राष्ट्रीय प्रसार सेवा योजना सामुदायिक विकास समस्त समुदाय के चतुर्दिक विकास की वह प्रक्रिया है जिसमें जनसहभागिता के माध्यम से सामुदायिक जीवन बेहतर बनाया जाता है। बहुत से विद्वान ग्रामीण प्रशासन को सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के संचालन का साधन स्वीकार किया है। **राजेश्वर दयाल** का कथन है कि "सामुदायिक विकास कार्यक्रम" जनता का कार्यक्रम है और जनता की सक्रिय सहभागिता ग्रामीण जनता को मात्र उसकी समस्याओं को निश्चित करने और उनके समाधान की विधियों का शिक्षण प्राप्त करने में ही अंतर्ग्रस्त करती है, अपितु उनको उस दिशा में ऐसा सकारात्मक कार्य करने के लिए प्रेरित भी करती है और पंचायतें इस प्रकार के कार्य के लिए उपयुक्त संस्थाएँ हैं।" इसी प्रकार ए. के. डे का मत है कि, "सामुदायिक विकास साध्य है और पंचायती राज उसे प्राप्त करने

का साधन। सामुदायिक विकास के लक्ष्य को पाने के लिए पंचायती राज को कुछ परीक्षणों से निकलना होगा।" इनके अतिरिक्त अन्य "सामुदायिक विकास कार्यक्रमों" को समुचित गति प्रदान करने एवं उन्हें जनता तक पहुँचाने के लिए एक साधन है। उपरोक्त कथनों से सामुदायिक विकास कार्यकम की महत्ता का पता चलता है। इस कार्यकम की अवधारणा थी कि सरकारी संस्थाओं का एक प्रतिनिधि ग्राम स्तर का होना चाहिए जो पूर्ण प्रशिक्षित हों तथा ग्रामीण लोगों के साथ रहकर इनकी विभिन्न समस्याओं में सहायता प्रदान कर सके। सरकार का सम्पर्क बहुउद्देशीय होना चाहिए जो ग्राम स्तरीय कार्यकर्ताओं से ही शुरू हो। सरकार का ग्रामीण लोगों से सम्पर्क शिक्षा माध्यम द्वारा होना चाहिए तथा ग्रामीण विकास की जिम्मेदारी सरकार और ग्रामीण लोगों दोनों की होनी चाहिए। लोगों से सम्पर्क करने का प्रत्येक प्रयास स्थानीय संस्थाओं का विकास करके तथा नये संगठनों के विकास के द्वारा होना चाहिये। ग्राम विकास के प्रयास पूरे देश में न होकर क्षेत्रीय कार्यक्रम के अनुसार अधिक हों तथा अवधि योजनानुसार हों। सरकारी एजेन्सी की सेवाएँ प्रत्येक स्तर पर भली प्रकार संगठित की जायें। प्रसार कार्यकर्ताओं का प्रशिक्षण आवश्यक है तथा इसके माध्यम से व्यक्तिगत समुदायिक विकास का उद्देश्य होना चाहिए। उपर्युक्त आधार पर 1951 में "ट्रेनिंग कम डेवलपमेण्ट" कार्यक्रम विकसित किया गया तथा कृषि, पशुपालन, जन स्वास्थ्य, प्रौढ़ शिक्षा आदि कार्यकम विकसित करने का प्रशिक्षण कार्य आरम्भ किया गया, 100 ग्रामों को प्रत्येक केन्द्र से सम्बन्धित किया गया। एक ग्राम सेवक 10 गाँवों में प्रसार कार्य करता था । कृषि कार्य को अधिक महत्व दिया गया। 2 अक्टूबर 1952 में 55 सामुदायिक विकास प्रोजेक्ट आरम्भ किये गये। प्रत्येक प्रोजेक्ट में 3 विकास खंड प्रत्येक विकास खंड में 300 गाँव आते थे। प्रत्येक प्रोजेक्ट को 2 वर्ष के लिए 65 लाख रुपये संघन कार्य करने हेतु दिये जाते थे।

कार्यक्रम

1. कृषि तथा कृषि से सम्बन्धित कार्यक्रम बेकार पड़ी बंजर भूमि का सुधार करना।
2. सिंचाई सुविधा का विकास करना।
3. उन्नतिशील तरीके, पशु–चिकित्सा तथा प्रजनन, मृदा अनुसंधान तथा उर्वरक प्रयोग, वनोत्सव, सब्जी तथा फलोत्पादन, साख तथा विपणन आदि सुविधा देना।
4. संचार साधन, सड़क और यातायात साधन का विकास करना।
5. शिक्षा का विकास तथा अनिवार्य शिक्षा का विकास करना।
6. उद्योग धन्धों के बारे में प्रशिक्षण तथा विकास करना।
7. स्वास्थ्य सुविधाएँ जन स्वास्थ्य, जच्चा व बच्चा कल्याण केन्द्र तथा औषधालय आदि बनवाना।

8. सहकारी समितियों का गठन करना।
9. गृह व्यवस्था में सुधार लाना।

प्रोजेक्ट की सफलता देखते हुए 1953 में राष्ट्रीय प्रसार सेवाएँ आरम्भ की गईं और इसे स्थायी योजना का रूप दिया गया तथा विकास खण्डों की स्थापना की गयी। प्रत्येक विकास खण्ड को 100 ग्राम, 150 वर्गमील क्षेत्रफल अथवा 66000 जनसंख्या निर्धारित की गयी । एक ग्राम स्तरीय कार्यकर्ता 5 से 10 ग्रामों में कार्य करता था। बाद में स्त्रियों को विकास हेतु 2 ग्रामसेवक प्रति विकासखंड नियुक्त किये गये। खण्ड स्तर पर विकास खण्ड अधिकारी प्रशासक था और विषय विशेषज्ञों की टीम जिसमें कृषि, पशुपालन, सहकारिता, कृषि अभियन्त्रण, लघु सिंचाई, कुटीर उद्योग, सामाजिक शिक्षा और पंचायत विशेषज्ञ थे। इसका उद्देश्य ग्रामीण लोगों को विकास कार्यों के उद्देश्य से अवगत कराना तथा उनकी समस्याओं को मालूम करना और उनके सहयोग से कार्यक्रम का नियोजन करना था। ब्लाक में पूरे स्टाफ के साथ गहन रूप से विकास कार्य विकसित किये जाते थे। सामुदायिक विकास खण्ड-अधिक स्टाफ की नियुक्ति तथा अधिक कार्यक्रम विकसित किये जाते थे। कम से कम स्टाफ की नियुक्ति तथा अधिक कार्यक्रम और संगठनों को विकसित किया जाता था। प्रति वर्ष 30000 रुपये व्यय के लिए निर्धारित था। वर्ष 1953 से 1957 तक के सामुदायिक विकास और राष्ट्रीय प्रसार सेवाओं ने यह सिद्ध किया कि पुरानी प्रथाओं और परम्पराओं से घिरे हुए बाहरी सहायता पर निर्भर रहने वाले परतन्त्र व्यक्तियों में आत्म-विश्वास पैदा किया जा सकता है। सामुदायिक विकास योजना के आरम्भ में यह कहा जाता था कि यह ग्रामीणों के सहयोग से होने वाला सरकारी कार्यक्रम है।

विकास कार्यों के प्रति किसानों का उत्साह कम देखकर भारत सरकार ने 1957 में एक समिति, कार्यक्रम को सुचारू रूप से विकसित करने हेतु संगठित की, जिसे **बलवंत राय मेहता समिति** के नाम से जाना जाता है। जिसने सुझाव दिये कि–

1. जैसा कि प्रयोग में है प्रसार कार्य को चार चरण में न बांटा जाये। इसकी जगह दो चरण, जिनका कार्यकाल 5 वर्ष हो सामुदायिक विकास खण्ड प्रथम चरण एवं द्वितीय चरण तथा प्रथम चरण में अर्थव्यवस्था द्वारा कार्यों को सघन रूप में विकसित किया जाये।
2. स्थानीय स्वयं संचालित संस्थाओं को गाँव विकास खण्ड और जिला स्तर पर विकसित किया जाये तथा कार्यक्रम को नियोजित तथा संचालन करने में आवश्यक अधिकार और साधन उपलब्ध कराये जायें।
3. इन कार्यक्रमों में जागरुकता का अभाव है तथा इसमें जन सहभागिता भी कम है, अतः त्रिस्तरी पंचायतों की संरचना द्वारा इसे दूर किया जाना चाहिए।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम का उद्‌देश्य

सामुदायिक विकास एक तरीका है और प्रसार एक एजेन्सी है, जिसके द्वारा पंचवर्षीय योजनाएँ ग्रामीण लोगों के सामाजिक और आर्थिक जीवन में सकारात्मक परिवर्तन लाने का प्रयास करती है। इसमें कृषि वैज्ञानिक तरीकों, कुटीर तथा निम्न स्तरीय उद्योगों के विकास द्वारा रोजगार के उपलब्ध कराने का प्रावधान था। ग्रामीण लोगों में अच्छा जीवन व्यतीत करने की तीव्र इच्छा जागृति करना तथा उन्हीं कार्यों को आरम्भ करना जिनमें स्वयं सहायता और पारस्परिक सहयोग का गुण मौजूद है इसके प्रमुख उद्‌देश्य थे। विकास खंडों की स्थापना करने का उद्‌देश्य सलाह एवं परामर्शों के साथ-साथ व्यवहारिक सहायता प्रदान करना बीज, खाद, धन तथा तकनीक आदि उपलब्ध कराना। ग्राम स्तरीय विभिन्न विकासशील संस्थाओं में सह-सम्बन्ध स्थापित करना। पुराने रुढ़वादी दृष्टिकोण में परिवर्तन करना। उत्तरदायित्वपूर्ण एवं संवेदनशील नेतृत्व का विकास। आत्मविश्वास नागरिकता तथा नवीन राष्ट्र निर्माण के प्रति जागृति करना। कृषि तथा आय में वृद्धि लाने हेतु शिक्षा के साथ-साथ पूर्ति साधनों की व्यवस्था करना। ग्रामीण संस्थाओं का विकास तथा प्रशिक्षण। जन स्वास्थ्य और संचार साधनों का विकास। सामाजिक सुधार हेतु विभिन्न नीतियों का विकास। युवकों, महिलाओं का विकास तथा परिवारों की संगठित योजना तैयार करना।

सामुदायिक विकास की कमियाँ

1. आदर्शवाद दर्शन शास्त्र-राष्ट्रीय विकास के सिद्धान्तों को आदर्श मानकर।
2. सामुदायिक विकास पूर्ण रूप से स्थानीय साधनों द्वारा पूरा नहीं हो सकता है।
3. प्रेरणात्मक तथा निर्देशनात्मक परिवर्तन।
4. सामाजिक न्याय में विश्वास।
5. ग्रामीण तथा पिछड़े क्षेत्रों के विकास की महत्वता।
6. आत्मनिर्भरता विज्ञान और तकनीकी विकास द्वारा हो।
7. प्रत्येक समुदाय को विकास की इकाई माना जाये।
8. जन सहयोग प्राप्त करना आवश्यक है।
9. जीवन की प्रथाओं तथा परम्परागत तरीकों में परिवर्तन के प्रति भविष्यवाणी नहीं की जा सकती है।
10. प्रजा तांत्रिक प्रणाली में विश्वास।
11. सामाजिक परिवर्तन के लिये मनोवृत्ति में परिवर्तन सहकारिता तथा सामुदायिक एकता आवश्यक है।

सर्वोदय

जान रक्सिन की पुस्तक ''अनटू द लास्ट'' से प्रेरित होकर महात्मा गाँधी ने सर्वोदय का सिद्धान्त प्ररतुत किया। इसमें सबके विकास की बात तथा सबके कार्यों के प्रति समान सम्मान प्रदान करने पर बल दिया गया है। गाँधीजी का मत था कि जो लोग पहले से ही सशक्त एवं सक्षम होते हैं, वे स्वयं अपना विकास करते हैं। किन्तु समाज का एक बड़ा वर्ग कमजोर एवं अक्षम होता है। उसे भी सबके साथ प्रगति के पथ पर अग्रसरित होने का हक है। अतः कदम से कदम मिलाकर चल सके; इसके लिए सर्वोदय कार्यक्रम चलाने की बात कही गयी। यह सिद्धान्त यह कार्यक्रम गाँधीजी के रचनात्मक सिद्धान्तों पर आधारित है। यह कार्यक्रम सरकारी और गैर सरकारी मिला-जुला प्रयास विशेषकर कॉंग्रेस पार्टी के द्वारा आरम्भ किया गया। बम्बई प्रान्त में यह कार्य 1948–1949 से ही लागू कर दिया गया था। कार्य विश्वसनीय तथा प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं द्वारा जिन्हें संचालक कहते थे, आरम्भ किया गया था। कार्यकम की देखरेख सर्वोदय समिति करती थी। इसके निम्न उद्‌देश्य थे–

उददेश्य

1. भेदभाव रहित व्यवहार।
2. साधनों की शुद्धता।
3. अच्छे उद्‌देश्य के लिये अच्छे साधन।
4. आर्थिक विकेन्द्रीकरण।
5. अहिंसा।
6. व्यक्ति का विकास।
7. भौतिक साधनों का विकास।
8. समान कार्य का मूल्य।
9. सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक एकता की व्यवस्था।
10. घरेलू उद्योग धन्धों का विकास।
11. कृषि का विकास।
12. रहन-सहन का स्तर बढ़ाना।
13. साक्षरता में वृद्धि करना।
14. गाँव पंचायतों का विकास।
15. स्वास्थ्य सुविधाओं का विकास।

कार्यक्रम की कमियाँ

1. स्थायी संगठन नहीं था तथा कार्यकर्ता गांव में रहकर किसानों के साथ कार्य करने में रुचि नहीं लेते थे।
2. सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था केवल सैद्धान्तिक थी व्यावहारिक नहीं।
3. अधिकतर ऐसी जमीन मिली जो खेती योग्य नहीं थी ।
4. ग्राम दान, भू-दान, सम्पत्ति दान के नारों से जो जमीन आदि मिली किन्तु उसका वितरण उचित नहीं हुआ।

कृषि की प्रगति के लिए चलाये गए कार्यक्रम

भारत में सघन रूप से कृषि विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत कृषि क्षेत्र में विकास लाने के लिए सर्वप्रथम फोर्ड-फाउण्डेशन की कृषि उत्पादन टीम के द्वारा सुझाव दिया गया कि भारतवर्ष में कुछ चुने हुए भाग में विकास प्रयासों का फैलाव कर नतीजों को प्राप्त किया जाय। चुने हुए क्षेत्रों में सघन (ठोस सभी प्रकार की आवश्यक सुविधाएँ उपलब्ध करवाकर) रूप में प्रयास करके किया जाये। जिससे प्रयासों के नतीजे मिल सके तथा अन्य क्षेत्रों में साधारण प्रयासों को प्रभावशाली बनाया जा सके। गाँव वालों को अच्छी उपज प्राप्त करना, उन्नतिशील बीज, उर्वरक, कीटाणुनाशक तथा सिंचाई के लिए पानी आदि की व्यवस्था एक साथ की जाये। पैकेज सेवाएँ—जैसे क्षेत्रीय प्रसार एजेन्सी, भूमि विकास, जल उपयोग तथा व्यवस्था, सहकारी साख, विपणन सुविधा, कीमतों पर नियन्त्रण, फार्म नियोजन तथा कम्पोजेक्ट क्षेत्रीय प्रदर्शन में विशेष प्रसार किये जायें।

इस योजना के आधार पर 1960—61 में पाँच साल के समय के लिए कार्यक्रम आरम्भ किए गये। मुख्य उद्देश्य सघन तथा लाभदायक ठोस उन्नतिशील कृषि विधियों का प्रयोग करना तथा कृषि उपज में शीघ्र उन्नत लाने के लिए पर्याप्त प्रेरणाएँ देना। यह प्रोजेक्ट मुख्य रूप से 1961—62 में सात जिलों में तथा 1962—63 में आठ जिलों में फोर्ड फाउण्डेशन की सहायता से चलाया गया था। तन्जौर (मद्रास), वेस्ट गोदावरी (आन्ध्रप्रदेश), शाहबाद (बिहार), रायपुर (मध्य प्रदेश), अलीगढ़ (उत्तर प्रदेश), लुधियाना (पंजाब), पाली (राजस्थान), अलिप्पी और पालघाट (केरल), माडया (मैसूर), सूरत (गुजरात), सम्बलपुर (उड़ीसा) वर्द्धवान (पश्चिमी बंगाल), भण्डारा (महाराष्ट्र), कचार (असम), जम्मू कशमीर के तीन विकास खण्ड, 1966—68 में हरियाणा प्रान्त अलग हो जाने से कर्नाल जिले में आरम्भ किया गया।

उद्देश्य

1. विस्तृत क्षेत्र के लिए सिंचाई हेतु पानी की पूर्ति।
2. प्राकृतिक प्रकोप से रक्षा; जैसे बाढ़, जल-निकास की समस्या तथा भूमि संरक्षण समस्या को कम करना।

3. सहकारी संस्थाओं तथा ग्राम पंचायतों का विकास।
4. अल्प काल में कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए अधिक से अधिक समर्थता विकास साधनों को उपलब्ध करवाकर पैदावार बढ़ाना।

कार्यक्रम

1. उत्पादन के लिए आवश्यक वस्तुओं; जैसे–उन्नतिशील बीज, उर्वरक, कृषि यंत्र, कीटाणु नाशक दवाएँ आदि की सामयिक तथा पर्याप्त पूर्ति की व्यवस्था की गयी ।
2. सहकारी समितियों द्वारा तथा अन्य उपयोगी एजेन्सी द्वारा ऋण की पर्याप्त व्यवस्था।
3. उत्पादित वस्तुओं की उचित कीमत प्राप्त करवाने के लिए विपणन सम्बन्धी तथा अन्य व्यवस्थाएँ उपलब्ध कराना ।
4. फार्म पर उत्पादित वस्तुओं तथा उत्पादन पूर्ति को संग्रह करने के लिए संग्रहालयों की व्यवस्था करना ।
5. सघन शिक्षात्मक प्रयास, विशेष रूप से वैज्ञानिक प्रदर्शनों द्वारा, तथा प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं द्वारा प्रशिक्षण।
6. यातायात व्यवस्था का प्रबन्ध ताकि पूर्ति और स्टाक में गतिशीलता प्राप्त हो सके।
7. पैदावार बढ़ाने के लिये फार्म तथा ग्राम-नियोजन जिसमें पशुपालन, मुर्गीपालन, फल-उत्पादन, सब्जी उत्पादन, मछली पालन भी शामिल था।
8. कृषि यन्त्रशाला, बीज की गुणात्मक विशेषता कायम रखने, मृदा परीक्षण आदि प्रयोगशालाए खोली गयीं।
9. ग्रामीण संगठन जैसे पंचायत तथा सहकारी समितियों को शक्तिशाली बनाया गया।
10. कार्यक्रम के नतीजों का मूल्यांकन करना।
11. प्रक्षेत्र नियोजन : कृषक परिवारों की फार्म-योजना तैयार करना।
12. उन्नतिशील क्रियाओं का प्रयोग।
13. नगद आमदनी देने वाली फसलों का समावेश।
14. उत्पादन योजना के आधार पर आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध करवाना।
15. योजनाधार पर सहकारी समितियों से ऋण की व्यवस्था।
16. किसानों के बारे में विस्तृत जानकारी एकत्र करना; यथा–
    (अ) कृषि साधन।
    (ब) भूमि का उपयोग तथा खेती करने की विधि।

(स) उन्नतिशील क्रियाएँ जो प्रयोग की जा सकती है।

(द) योजना हेतु धन की आवश्यकता पूर्ति आदि।

17. बीज उर्वरक तथा कृषि यन्त्रों की व्यवस्था करना।
18. फसल सुरक्षा सुविधाएँ देना।
19. कृषि यन्त्रों की जाँच तथा प्रशिक्षण देना ।
20. प्रदर्शन तथा प्रचार साधनों का प्रयोग करना ।
21. प्रसार शिक्षा तथा प्रशिक्षण देना।
22. मृदा परीक्षण सुविधाएँ मुहैया कराना।
23. सिंचाई के पानी का उपयोग एवं व्यवस्था करना ।
24. कृषि साख, विपणन तथा भण्डारण सुविधाएँ बढ़ाना।
25. सहकारी आन्दोलन।

सघन कृषि क्षेत्र कार्यक्रम

आई. ए. डी. पी. कार्यक्रम की ही भाँति सघन कृषि क्षेत्र कार्यक्रम 1964 में आरम्भ किया गया। अन्तर केवल इतना ही है कि क्षेत्र के अनुसार फसलों को सघन रूप से उत्पादित करके खाद्यान्न की दशा में सुधार लाना है; जैसे--किसी क्षेत्र में गेहूँ प्रमुख फसल है तो उस क्षेत्र में गेहूँ की सघन खेती पर बल दिया जाता है।

उद्देश्य

1. समय पर पर्याप्त ऋण सुविधाएँ उपलब्ध करवाना।
2. सघन कार्यक्रम के लिये शिक्षात्मक सुविधाएँ उपलब्ध करवाना।
3. प्राकृतिक प्रकोप से सुरक्षा, जल निकास, भूमि संरक्षण क्रियाएँ।
4. प्राकृतिक साधनों का उचित उपयोग करवाना।
5. समय पर पर्याप्त मात्रा में उत्पादन से सम्बन्धित सुविधाएँ उपलब्ध करवाना।
6. विपणन सुविधाएँ उपलब्ध करवाना।
7. आवश्यक अन्य सभी सुविधाएँ किसानों को हर समय उपलब्ध करवाना।

कार्यक्रम

1. समय पर बीज, उर्वरक और कीटाणु नाशक दवाइयों की व्यवस्था।
2. कृषि योजना के आधार पर ऋण व्यवस्था।
3. मूल्यांकन।
4. स्थानीय संस्थाओं का विकास।
5. कृषक गोष्ठी, प्रदर्शन, आन्दोलन का संचालन।

6. उत्तम किस्म के बीजों की व्यवस्था।
7. प्रशिक्षण कार्यक्रम।
8. साहित्य का वितरण।
9. फार्म नियोजन।
10. मृदा परीक्षण कार्यक्रम।

उन्नत बीज कार्यक्रम

रॉक फिलर फाउण्डेशन प्रोग्राम मैक्सिको (Rock Feller Foundation Programme Mexico) द्वारा गेहूँ की पैदावार में वृद्धि प्राप्त की गयी और अच्छे बीजों का प्रयोग अन्य उन्नतिशील क्रिया की अपेक्षा उचित दिखायी पड़ा तथा फसलों मे प्रजनन विकास कुछ कारणों से अनिवार्य समझा गया। अधिक उपज प्रत्यक्ष में अच्छी जातियों का नतीजा है।

उन्नतिशील जातियाँ, उर्वरक; अतिरिक्त नमी तथा आसानी के साथ अच्छे नतीजे देती हैं, उन्नतिशील जातियाँ किसानों को स्वीकृत जल्दी हो जाती हैं। अतः उन्नतिशील जातियों का प्रभाव देखते हुये यह कार्यक्रम सामुदायिक विकास योजना द्वारा देश की खाद्यान्न समस्या को हल करने तथा खाद्यान्न में आत्मनिर्भरता लाने के लिये 1966–67 में उन्नतशील जातियाँ (High Yielding Variety) कार्यक्रम आरम्भ किया गया।

उद्देश्य

1. ज्ञान के संयोग द्वारा संकर जातियों के प्रयोग से पैदावार में वृद्धि लाना।
2. तकनीकी ज्ञान उपलब्ध करवाना।
3. धान की पौध तैयार करने के लिए शिक्षा देना।
4. मिनीकिट प्रदर्शन विकसित करना।
5. गेहूँ की पैदावार में दुगनी वृद्धि करना ।
6. सिंचाई क्षेत्र में वृद्धि लाना।
7. भूमि संरक्षण तथा विकास सम्बन्धी साधनों का विकास करना।
8. कृषि तथा सुविधाओं का विकास ।
9. क्वालिटी सीड कार्यक्रम।
10. सामुदायिक नर्सरी का संचालन तथा इन सामुदायिक नर्सरी द्वारा पौध की सामयिक पूर्ति व्यवस्था।
11. धान नर्सरी (Paddy Nursery) तैयार करने के लिए शिक्षा कार्यक्रम ।
12. गेहूँ और धान की फसलों में वृद्धि लाने के लिये **मिनीकिट योजना** का संचालन।
13. धान बाजरा की उन्नतिशील जातियों का प्रयोग ।
14. उन्नतिशील जाति के गेहूँ का प्रचार, प्रयोग।

भारतवर्ष में किये गये कल्याणकारी ग्रामीण कार्यक्रम

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व संचालित किए गए कार्यक्रम

क्र.सं.	कार्यक्रम का नाम	वर्ष	संस्थापक
1.	सहकारी आन्दोलन	1904	एफ. निकल्सन
2.	श्री निकेतन (शान्ति निकेतन)	1908	रबिन्द्रनाथ टैगोर
3.	गुड़गाँव योजना	1920	एफ. एल. ब्रेनी
4.	मारथण्डम योजना	1928	स्पेन्सर हैच, वार्ड, एम.सी.ए.
5.	सामाजिक अधिनियम	1929	राजा राम मोहन राय
6.	सेवा ग्राम	1927	महात्मा गाँधी
7.	ग्रामीण विकास	1935	सरडेनिय हैमिल्टन
8.	अधिक अन्न उपजाओ आन्दोलन	1942	भारत सरकार
9.	इण्डियन विलेज सर्विस	1945	डब्ल्यू. एस. विशर वी. एन. गुप्ता
10.	फिरका विकास कार्यक्रम	1947	मद्रास सरकार
11.	इण्डियन विलेज सर्विस	1947	डब्ल्यू. एस. विशर
12.	इटावा अग्रगामी योजना	1947	अल्वर्ट मेयर

स्वतन्त्रता के उपरान्त संचालित किए गए कार्यक्रम

13.	नीलोखेरी परीक्षण योजना	1949	एस. के. डे
14.	सर्वोदय योजना	1950	विनोबा भावे
15.	फूड एण्ड एग्रीकल्चर ऑर्गनाइजेशन	1948	भारत सरकार
16.	यूनाइटेड नेशन्स इण्टरनेशन चिल्ड्रन इमरजेन्सी फण्ड	1948	भारत सरकार
17.	वर्ल्ड हैल्थ ऑर्गनाइजेशन	1948	भारत सरकार
18.	पंचवर्षीय योजना		
	प्रथम पंचवर्षीय योजना	1951–56	
	द्वितीय पंचवर्षीय योजना	1956–71	
	तृतीय पंचवर्षीय योजना	1961–66	
	वार्षिक योजना	1966–67	
	वार्षिक योजना	1967–68	
	वार्षिक योजना	1968–69	
	चौथी पंचवर्षीय योजना	1969–74	
	पांचवीं पंचवर्षीय योजना	1974–79	
	छठवीं पंचवर्षीय योजना	1980–85	

	सातवीं पंचवर्षीय योजना	1985—90	
	आठवीं पंचवर्षीय योजना	1985—90	
	वार्षिक योजना	1995—97	
	नौवीं पंचवर्षीय योजना	1997—02	
	दसवीं पंचवर्षीय योजना	2002 से प्रारम्भ	
19.	सामुदायिक विकास योजना	1952	एस. के. डे (भारत सरकार)
20.	राष्ट्रीय प्रसार सेवाएँ	1953	भारत सरकार
21.	छूआछूत निवारण	1956	भारत सरकार
22.	पंचायती राज व्यवस्था	1957	मेहता समिति
23.	रबी तथा खरीब आन्दोलन	1958	भारत सरकार
24.	गहन कृषि जिला कार्यक्रम	1960—61	भारत सरकार फाउण्डेशन
25.	बालवाडी न्यूट्रीशन कार्यक्रम	1966—67	भारत सरकार सरकार
26.	हाई ईल्डिंग वैराइटी कार्यक्रम	1970—71	भारत सरकार
27.	एशिया प्रोजेक्ट 1993		

उत्पादन एवं अन्य विशेष कार्यक्रम

28.	सघन कृषि क्षेत्र कार्यक्रम	1964
29.	राष्ट्रीय प्रदर्शन	1965
30.	बहुफसली योजना कार्यक्रम	1967
31.	सघन पशु विकास कार्यक्रम	1964
32.	सूखोन्मुख क्षेत्र कार्यक्रम	1970
33.	बारानी कृषि हेतु सम्मिलित विकास	1970
34.	कमाण्ड क्षेत्रों विकास कार्यक्रम	1974
35.	रेगिस्तान विकास कार्यक्रम	1977
36.	लघु सीमान्त कृषक एवं कृषि श्रमिकों के विकास कार्यक्रम	1970
37.	हरित क्रान्ति	1965
38.	इण्टीग्रेटेड चाइल्ड डेवलपमेण्ट सर्विस	1975
39.	कमाण्ड एरिया डेवलपमेण्ट प्रोग्राम	1975—76
40.	महिला समस्या कार्यक्रम	1990
41.	सेल्फ एम्पलाईमेण्ट फोर एजूकेटिड ग्रुप	1983—84
42.	वेलफेयर सर्विस फोर एजिड	1983—84
43.	रूरल लेड लैस एम्पालाइमेंट गारण्टी प्रोग्राम	1983—84

44.	जवाहर रोजगार योजना	1984
45.	इन्द्रा आवास योजना	1980
46.	रूरल वाटर सप्लाई प्रोग्राम	1990
47.	रूरल फंक्शनल लिट्रेसी प्रोजेक्ट	1967–68
48.	क्राप इंश्योरेंस	1990
59.	आपरेशनफलड	1970–81आनंद डेरी

ग्रामीण विकास से सम्बन्धित कार्यक्रमों का संक्षेप रूप

ए. एन. पी.	एप्लाइड न्यूट्रीशन प्रोग्राम
सी. डी. पी.	कम्सुनिटि डेवलपमेण्ट प्रोग्राम
सी.ए.डी.पी. मोड	एरिया डेवलपमेण्ट प्रोग्राम
डी. पी. ए. पी.	ड्राट प्रोन ऐरिया प्रोग्राम
डी. डी. पी.	डेजर्ट डेवलपमेण्ट प्रोग्राम
एच. ए. डी. पी. हिल	एरिया डेवलपमेंट प्रोग्राम
आई. टी. डी.	इण्टीग्रेटेड ट्राइवल्स डेवलपमेण्ट
आई. आर. डी. पी.	इन्टीग्रेटेउ रूरल डेवलमेण्ट प्रोग्राम
के. बी. आई. सी.	खादी विलेज इण्डस्ट्रीज कमीशन
के. वी. के.	कृषि विज्ञान केन्द्र
एल. एल. पी.	लैट टू लैड प्रोग्राम
ओ. आर. पी.	ऑपरेशनल रिसर्च प्रोजेक्ट
एस. एफ. ए. एल.	स्माल फारमर एग्रीकल्चर लेबर
एम. एफ. ए. एल.	मार्जिनल फारमर एग्रीकल्चर लेबर
टी. आर. वाई. एम. इ. एम.	टेनिस ऑफ रूरल यूथ फॉर सेल्फ एम्पलाइमेण्ट
ए. ओ. ए.	आउडीवो मीज्यूअल ऐड
ए. डी. ओ.	असिस्टेण्ट डेवलपमेण्ट ऑफीसर
बी. ए. सी.	ब्लॉक एडवाईजरी कमेटी
बी. डी. ओ.	ब्लॉक डिवलपमेण्ट ऑफीसर
सी. एस. आर. आई.	सेण्ट्रल सुगर रिसर्च इन्स्टीट्यूट
डी. पी. ओ.	डिसट्रिक्ट प्लानिंग ऑफीसर
एफ. ए. ओ.	फूड एण्ड एग्रीकल्चर ऑर्गगनाइजेशन
एफ. एफ.	फार्म फोरम
आई. सी. ए. आर.	इण्डियन काउन्सिल ऑफ एग्रीकल्चर रिसर्च

आई. बी. आर. आई.	इण्डियन वेटनरी रिसर्च इन्स्टीट्यूट
एन. डी.आर. आई.	नेशनल डेरी रिसर्च इन्स्टीट्यूट
आई. वी. एस.	इण्डियन विलेज सर्विसेज
पी. ओ	प्रोजेक्ट ऑफीसर
यू. एन. आई. सी. एफ.	यूनाइटेड नेशन इण्टरनेशनल चिल्ड्रन इमरजेन्सी फण्ड
वाई. एम. डी.	युवक मंगल दल
एल. वी. एस.	लीड बैंक स्कीम
एन. वी. ए. आर. डी.	नेशनल वैलफेयर एण्ड रूरल डेवलपमेण्ट
एन. आर. ई. पी.	नेशनल रूरल एम्पलाइमेण्ट प्रोग्राम
एफ. ए. ओ.	फूड एण्ड एग्रीकल्चर ऑरगनाइजेशन
ट्राईसम	ट्रेनिंग ऑफ रूरल यूथ फॉर सेल्फ एम्पलाइमेण्ट

वर्तमान समय में कुछ विकास सम्बन्धी कार्यक्रम चल रहे हैं जिनका गरीबों, दलितों एवं महिलाओं के उत्थान से सीधा सम्बन्ध है, ऐसी योजना का संक्षिप्त विवरण निम्न सारणी में दिया गया है।

योजना का नाम	उद्देश्य	हितग्राही
स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना	ग्रामीण क्षेत्रों मे बहुत बड़ी संख्या में छोटे–छोटे उद्यम स्थापित कर चयनित गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन करने वाले परिवारों को तीन वर्षो में गरीबी रेखा के ऊपर लाना।	गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन करने वाले चयनित परिवार। प्रत्येक विकास खण्ड में गठित समूहों में से 50 प्रतिशत समूह केवल महिलाओं के होगें।
जवाहर ग्राम समृद्धि योजना	ग्रामीण क्षेत्रों में सामुदायिक अधोसंरचना का विकास और रोजगार उपलब्ध करवाना।	ग्राम पंचायत
रोजगार आश्वासन योजना	रोजगार आश्वासन योजना का मुख्य उद्देश्य रोजगार अनुपलब्धता की स्थिति में जरूरतमंद लोगों को रोजगार मुहैया कराते हुए सामुदायिक परिसंपत्तियों का निर्माण करना।	प्रदेश के सभी विकास खण्ड
इन्दिरा आवास	ग्रामीण क्षेत्र में गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले आवसहीनों को आवास सुविधा उपलब्ध कराना।	ग्रामीण क्षेत्रों के आवासहीन
ग्रामीण आवास ऋण सहनुदान योजना	ऐसे ग्रामीण परिवारों को आवास उपलब्ध करवाना जिनकी वार्षिक आय 32 हजार रूपये	ग्रामीण क्षेत्रों के ऐसे आवासहीन जिनकी आय 32 हजार रुपये सालाना तक हो और

	तक हो और जिन्हें इन्दिरा गाँधी आवास योजना के अंतर्गत मदद नहीं मिल पाती है और आवास निर्माण के इच्छुक हैं, को सहयता उपलब्ध कराना।	जिन्हें इन्दिरा आवास योजना की मद्द नहीं मिली है।
समग्र आवास योजना	ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों के जीवन स्तर के समग्र रूप से सुधार करना।	चयनित विकासखण्ड
राष्ट्रीय दलहन विकास परियोजना	प्रदेश में तिलहन उत्पादन और उत्पादकता को बढ़ावा देना।	अनुसूचित जाति.अनुसूचित जनजाति लघु और सीमान्त श्रेणी तथा सामान्य श्रेणी के कृषक हितग्राही होते हैं।
तिलहन उत्पादन कार्यक्रम	प्रदेश मे तिलहन उत्पादन और उत्पादकता में वृद्धि करना।	सभी श्रेणी के कृषक योजना का लाभ ले सकते हैं
राष्ट्रीय जल ग्रहण योजना	बारानी क्षेत्रों मे जलग्रहण क्षेत्र के आधार पर भूमि तथा वर्षा के जल से लघु सीमान्त कृषकों और खेतीहर मजदूरों के लिये रोजगार के अवसर में वृद्धि करना और पारिस्थितिकीय संतुलन स्थापित करना।	जलग्रहण क्षेत्र के समस्त कृषक और निवासी अनुसूचित जाति और अनु जनजाति, लघु सीमान्त भूमिहीन मजदूर तथा सामान्य श्रेणी के कृषक।
बायोगैस विकास परियोजना	ऊर्जा के वैकल्पिक स्त्रोत उपलब्ध करवाना तथा कृषि के लिये उत्तम खाद उपलब्ध कराना।	अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति, लघु सीमान्त भूमिहीन मजदूर तथा सामान्य श्रेणी के कृषक
एकीकृत ग्रामीण विकास योजना	गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन करने वाले परिवार को आर्थिक सहायता पहुंचाना, जिससे वे स्वरोजगार स्थापित कर गरीबी दूर कर सकें।	जिस परिवार की वार्षिक आय रु. 11000 तक हो
महिला समृद्धि योजना	महिलाओं मे बचत की प्रवृति को प्रोत्साहित करना ताकि विकट परिस्थिति में महिलाओं के पास धन उपलब्ध रहे।	18 वर्ष आयु की कोई भी ग्रामीण महिला
राष्ट्रीय मेटरनिटी बेनीफिट योजना	गरीब परिवार की महिलाओं को गर्भावस्था के समय चिकित्सीय और आर्थिक सहायता प्रदान करना । योजना के अन्तर्गत सहायता राशि	गर्भवती महिला की आयु 19 वर्ष अथवा अधिक हो, गरीबी रेखा के नीचे के परिवार की हो, केवल 2 जीवित जन्म तक ही
सहायता	रूपये 300 है, जो प्रसव के 12 से 8 सप्ताह पूर्व दी जाती है।	उपलब्ध।
राष्ट्रीय परिवार सहायता योजना	गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले परिवार के मुखिया, जिनकी आयु 18 वर्ष से	गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाला हो।

	अधिक और 65 वर्ष से कम है उन की मृत्यु होने पर आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है।	
एक बत्ती कनेक्शन योजना	ग्रामीण क्षेत्र के अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के सभी परिवार और सामान्य वर्ग के गरीबी की रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले परिवारों के साथ ही शहरी क्षेत्रों के पट्टाधारी, झुग्गी झौंड़ी निवासी अथवा गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले सामान्य वर्ग के परिवारों को अत्यंत रियायती दरों पर बिजली मुहैया करवायी जाती है।	ग्रामीण क्षेत्रों मे सभी अनुसूचित जाति/जनजाति वर्ग एवं गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले को सहायता प्रदान की जाती है।
अनुसूचित जाति जनजाति राहत योजना	पीड़ित अनुसूचित जाति और जनजाति के परिवारों को तत्काल आर्थिक सहायता उपलब्ध करवाना।	सवर्णो द्वारा अत्याचार से पीड़ित विपन्नता तथा असहाय अवस्था के कारण संकट से ग्रस्त अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के परिवारों को इस कार्यक्रम के माध्यम से सहायता प्रदान की जाती है।
सामाजिक सुरक्षा पेंशन योजना	निराश्रित व्यक्तियों को आर्थिक सहायता पहुँचाना है।	60 वर्ष के एवं 6 वर्ष से अधिक आयु के विकलांग व्यक्ति।
प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना	ग्रामीण क्षेत्रों में बारहमासी सड़कों का राष्ट्रव्यापी जाल बिछाकर ग्रामीण सम्पर्कता को बढ़ाना।	समस्त ग्रामवासी वर्ष 2007 तक 500 व्यक्तियों से ज्यादा जनसंख्या वाले क्षेत्रों को बारहमासी सड़कों से जोड़ना।
ग्रामीण आवास योजना	नवीं योजना अवधि के अंत तक आवासहीनता को समाप्त करने के प्रयास चल रहे हैं। "सभी के लिए आवास" सरकार का उद्देश्य है।	ग्रामीण गरीबों अर्थात् जिनका नाम गरीबी रेखा के नीचे के परिवारों की सूची में है।
ग्रामीण जलापूर्ति कार्यक्रम	जल संरक्षण, जल उपयोग, जल एकत्रित करने, मरुभूमि विकास कार्यक्रम/जल की कमी/सूखा प्रभावित क्षेत्रों में पेयजल स्त्रोतों के स्थायित्व के लिए कार्य कर शुद्ध पेयजल उपलब्ध कराया जाना।	समस्त ग्रामीण क्षेत्र
केन्द्रीय ग्रामीण स्वच्छता कार्यक्रम।	खाद्य स्वच्छता, व्यक्तिगत स्वच्छता, घरेलू तथा पर्यावरण स्वच्छता के विस्तार को बढ़ावा देना। ग्रामीण क्षेत्रों में शौचालय निर्माण विद्यालय स्वच्छता जागरूकता उत्पन्न करना, समुचित	समस्त ग्रामीण क्षेत्र

	मूल्य प्रभावित और अनुकूल प्रौद्योगिकी को प्रोत्साहन।	
अन्नपूर्णा योजना	हर माह 10 किलोग्राम खाद्यान ऐसे व्यक्तियों को मुत दिया जाता है जो गरीबी रेखा के नीचे है और जिनकी आयु 65 वर्ष से अधिक है।	समस्त चयनित व्यक्ति
सुनिश्चित रोजगार योजना	गरीबी रेखा से नीचे रह रहे ग्रामीण गरीबों को अतिरिक्त मजदूरी, रोजगार अवसर मजदूरी रोजगार की अत्यधिक कमी की अवधि के दौरान उपलब्ध कराना ।	गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाल चयनित परिवार अनुसुचित जाति, जनजाति तथा बालश्रमिकों के अभिभावकों को प्राथमिकता ।

क्षेत्र विकास उपागम

भारत में स्वतंत्रता के पश्चात् विकास के लिये नियोजित अर्थ–व्यवस्था की पद्धति अपनाई गई जिसके पश्चात् ग्रामीण विकास को समग्र दिशा देने के लिये सामुदायिक विकास केन्द्रों की स्थापना की गई तथा सामूहिक विकास पर बल देने वाले सामुदायिक विकास कार्यकम को लागू किया गया। इसके मूल्यांकन के लिये गठित बलवंतराय मेहता समिति ने यह प्रतिवेदन दिया कि सामुदायिक विकास कार्यक्रमों का प्रभाव अनेक क्षेत्रों में पूर्णतः नगण्य रहा है। अतः इन क्षेत्रों के लिये विशेष विकास कार्यक्रम संचालित किया जाना आवश्यक है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के पश्चात् इस प्रकार के क्षेत्रीय विकास के उपागम को अपनाते हुए अनेक कार्यक्रम संचालित किये गये।

क्षेत्रीय विकास के उपागम की अवधारणा

इस दृष्टिकोण के समर्थक विद्वानों का कहना है कि यदि एक ही साथ हम सभी दिशाओं में प्रयास करते हैं तो विकास प्रक्रिया बाधित होती है। अतः संतुलित विकास प्रक्रिया के परिसीमन पर जो क्षेत्र बहुत ही अधिक पिछड़े और समस्या ग्रस्त रहने के साथ ही साथ आत्मनिर्भर होने की स्थिति में नहीं हैं, उन क्षेत्रों के लिए पृथक से विशेष कार्यक्रम संचालित करके उन्हें भी विकास के पथ पर अग्रसारित करना आवश्यक है। किसी क्षेत्र विशेष के लिए पृथक से कार्यक्रम तैयार करके उनके विकास के लिये जो कार्यक्रम तैयार किया जाता है इससे सम्बन्धित विचारधाराओं को क्षेत्रीय विकास उपागम के अन्तर्गत समाहित किया गया है। उदाहरण के लिए आदिवासी क्षेत्रों के विकास के लिये ट्राइवल डेवलपमेंट प्रोग्राम संचालित किया जाना तथा सूखाग्रस्त क्षेत्रों के लिए 'Drough Prone Area Programme' इत्यादि।

भारत में क्षेत्रीय विकास से सम्बन्धित कार्यक्रम

सामुदायिक विकास कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामीण विकास के समग्र पहलुओं को गति प्रदान करना था, किन्तु यह कायक्रम सफल नहीं हो पाया। अतः द्वितीय पंचवर्षीय योजना के पश्चात् भारत में यह महसूस किया जाने लगा कि किसी क्षेत्र विशेष को चयनित करके जब तक पूर्ण सक्षमता के साथ प्रयास नहीं किया जायेगा तब तक अपेक्षित लक्ष्यों को प्राप्त करना संभव नहीं है। इन लक्ष्यों के अनुरूप भारत में अनेक कार्यक्रम संचालित किये गए जिनमें से कुछ प्रमुख का उल्लेख निम्न प्रकार किया जा रहा है।

1. भूमि सुधार कार्यक्रम।
2. ग्रामीण जल आपूर्ति कार्यक्रम।
3. ग्रामीण ऊर्जा आयोजन कार्यक्रम।
4. सूखा ग्रस्त क्षेत्र विकास कार्यक्रम।
5. मरूस्थल विकास कार्यक्रम।
6. गहन कृषि विकास कार्यक्रम।

गरीब सम्प्रत्य का बदलता प्रतिमान

उपर्युक्त कार्यकमों का प्रमुख लक्ष्य गरीबी दूर करके गाँव को आत्मनिर्भर बनाना है। इसके लिए यह माना जाता है कि गरीबी स्वयं एक समस्या है। **प्रो. रागनर नर्कसे** ने यह प्रतिपादित किया है कि एक देश इसलिए निर्धन है क्योंकि वह निर्धन है? वास्तव में निर्धनता के दुष्चक्र के कारण ही भारत जैसे विकासशील देश विकास नहीं कर पा रहे हैं। क्योंकि गरीब होने के कारण कम आय होती है। कम आय होने से लोगों की बचत भी कम होती है। इसके कारण वे कम विनियोग भी करते हैं। कम विनियोग के कारण अंततः कम पूंजी का निर्माण होता है। जिससे उत्पादकता प्रभावित हो जाती है। अब प्रश्न उठता है कि निर्धनता का यह दुष्चक्र कैसे समाप्त किया। जाय इसके लिए विकासशील देशों में गरीबों को पहचान कर उनका पृथक से विचार करने की बात कही जाती है। विश्व बैंक रिपोर्ट 1998 में विकासशील देशों का कुल जनसंख्या का एक तिहाई भाग निर्धनता रेखा के नीचे जीवनयापन करता था जिनकी लगभग 18 प्रतिशत जनसंख्या अति निर्धन मानी गयी है।

निर्धनता रेखा क्या है ? यह एक आंकड़ों का जादू है। भारत में प्रारंभ में ग्रामीण क्षेत्र में 2400 और शहरी क्षेत्र में 2100 प्रतिदिन प्रति व्यक्ति कैलोरी लेने हेतु आवश्यक व्यय से कम आय प्राप्त करने वाले लोगों को निर्धन माना गया था। वर्ष 1993–94 के लिए सरकारी अनुमान के अनुसार यह व्यय ग्रामीण क्षेत्र के लिए प्रति व्यक्ति प्रतिमाह 228.9 रूपये और शहरी क्षेत्र के लिए 264.1 रुपया था।

आठवीं पंचवर्षीय योजना तक आय को ही निर्धनता का आधार माना गया था अर्थात् निर्धारित आय से जो भी परिवार कम आय प्राप्त करता है वह गरीबी रेखा के नीचे माना गया है। नवीं पंचवर्षीय योजना में यह माना गया कि केवल आय को ही निर्धनता का आधार मानना उचित नहीं है। वास्तव में समान आय प्राप्त करने पर भी एक परिवार दूसरे परिवार से गरीब हो सकता है। उदाहरण के लिए दो परिवारों की आय समान है। किन्तु एक परिवार में पति-पत्नी के अलावा एक ही बच्चा है; जबकि दूसरे परिवार में पति-पत्नी तथा उनके 5 बच्चे हैं तो निश्चित रूप से दूसरे परिवार का अधिक खर्च होने के कारण वह पहले के अपेक्षा गरीब होगा। अतः नवीं पंचवर्षीय योजना में गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन करने वाले लोगों की गणना करते समय आय के साथ ही साथ उनके व्यय का आंकलन भी किया गया।

दसवीं पंचवर्षीय योजना में देश में गरीबी रेखा के निर्धारण के लिए आय एवं व्यय को ही मात्र पर्याप्त कारण नहीं माना गया है, इसमें आय एवं व्यय के साथ ही साथ यह माना जा रहा है कि केरल और मध्यप्रदेश की समान आय के व्यक्ति का स्तर समान नहीं होगा। इस प्रकार के विषमताओं को दूर करने के लिए इस बार गरीबों के चिह्नीकरण एवं श्रेणी विभाजन हेतु निम्नांकित 13 मदों को इसके लिए सूचकांक के रूप में अर्जित किया गया है –

1. परिवार द्वारा धारित भूमि,
2. आवास का प्रकार,
3. प्रतिव्यक्ति पहनने की कपड़ों की उपलब्धता,
4. खाद्य सुरक्षा,
5. स्वच्छता,
6. उपभोक्ता वस्तुओं का स्वामित्व,
7. परिवार के सर्वाधिक पढ़े-लिखे व्यक्ति का शैक्षिक स्तर,
8. पारिवारिक श्रम का स्तर,
9. जीविकोपार्जन के साधन,
10. बच्चों का स्तर (5 से 14 वर्ष),
11. देनदारी के प्रकार,
12. परिवार के पलायन का कारण,
13. सहायता की प्राथमिकता।

उपरोक्त आधारों पर पूरे गाँव के परिवारों के हैसियत का आंकलन करके प्राप्तांक आधारित क्रम (School Based Ranking) तैयार किया जाता है। उसमें से गरीबी रेखा के लिए निर्धारित निर्णायक सीमा तय करके उसके नीचे रहने वाले परिवार को अब गरीब माना जा रहा है।

ग्रामीण विकास के क्षेत्र में उपरोक्त कार्यक्रमों के माध्यम से किये गये प्रयासों के परिणामस्वरूप देश में विकास की प्रवृतियाँ जन्म ले रही हैं। एक तरफ ग्रामीण उद्योगों मे विविधता आई तो दूसरी तरफ कृषि को भी उद्योग के रूप में स्थापित करने के प्रयास में सफलता प्राप्त हुई है। किन्तु इसके बाबजूद अभी भी ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि पर अधिकाधिक निर्भरता, धीमा पूंजी निर्माण, निम्न उत्पादकता चारों ओर फैली व्यापक बेरोजगारी पिछड़ेपन का प्रतीक है। विकास तो अवश्य हुआ है किन्तु विकास सीमित मात्रा में अवस्थित देश को दिशा निर्देश देने वाले भ्रष्टाचार में लिप्त जन प्रतिनिधियों एवं आकंठ भ्रष्टाचार में डूबी नौकरशाही का हुआ है।

●

4

सतत् विकास

समस्त ब्रह्माण्ड में पृथ्वी ही एक ऐसा ग्रह है जहाँ पर जीवन का अस्तित्व पाया जाता है। पृथ्वी के ऊपर पाये जाने वाले अनेक जीवों में से अपने विवेक एवं बौद्धिक सामर्थ्य के चलते मानव समस्त भू-मंडल का मालिक बना हुआ है। प्राचीन काल से ही मानव और प्रकृति के मध्य एक घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। प्राचीन भारतीय एवं वैदिक वाग्ड.गमय में अनेक उदाहरण मानव और प्रकृति की परस्पर पूरकता को उल्लेखित करते हैं। इन सब का सार यह है कि मानव विराट प्रकृति का एक अंश है। वह प्रकृति से परे नहीं रह सकता। उसे प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करना आवश्यक है। अतः अनेक प्राकृतिक संसाधनों; जैसे—हवा, धूप, जैविक पदार्थ; जैसे—पशु-पक्षी एवं अन्य जीव-जन्तु का भी संरक्षण होना आवश्यक है।

विकास के विभिन्न सिद्धांतों के विश्लेषण के पश्चात् यह निष्कर्ष निकलता है कि मानव विकास के नाम पर जो अर्थ संचय की प्रवृत्ति बढ़ी है तथा समाज में मूल्यों के प्रति जो एक नकारात्मक दृष्टिकोण का उद्भव हुआ है, इसके परिणामस्वरूप तीव्र गति से समाज औद्योगिक क्रांति के माध्यम से औद्योगिक विकास की तरफ प्रवेश किया है। विगत एक शताब्दी में औद्योगिक विकास के उद्देश्य से मानव ने प्राकृतिक संसाधनों का बड़ी निर्ममता एवं अविवेक पूर्ण ढ़ंग से दोहन किया है। अतः पारिस्थितिक तंत्र को संतुलित बनाने वाली तमाम प्राकृतिक शृंखलाओं के टूटने या विलुप्त होने के कारण सम्पूर्ण पारिस्थितिक तंत्र असंतुलित होता जा रहा है। पर्यावरण को असंतुलित बनाने में जनसंख्या विस्फोट, निर्वनीकरण तथा उपभोक्ता संस्कृति के प्रचार की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। उपभोक्तावादी मानसिकता से ग्रसित मानव प्राकृतिक संसाधनों का मात्र उपभोक्ता बनकर रह गया है तथा यह भूल गया है कि प्राकृतिक संसाधन सीमित हैं और एक दिन पूर्णतः समाप्त हो सकते हैं, जबकि विकास का लक्ष्य कभी भी इस प्रकार का विनाश नहीं होने देने का है । इस समस्या के अध्ययन के लिए ही गठित समिति का प्रतिवेदन है— **'क्लब ऑफ रोम रिपोर्ट**

क्लव ऑफ रिपोर्ट *'Club of Rom Report'* **की प्रमुख बातें** — संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा विश्व में उत्पन्न हो रही पर्यावरणीय समस्याएँ एवं विकास के स्वरूप एवं भविष्य का अध्ययन करने के लिये एक समिति का गठन किया गया था। इस समिति ने विश्व

के विभिन्न देशों के अपने अध्ययन के आधार पर अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। इस प्रतिवेदन को ही 'क्लब ऑफ रोम रिपोर्ट' कहा जाता है। इस रिपोट में यह बताया गया है कि मनुष्य अपनी विकास यात्रा पर चलता हुआ अकेला नहीं था उसके आसपास के उपस्थित पेड़-पौधे, जल-स्त्रोत, पशु-पक्षी, कीट-पतंगें उसके सहचर रहे हैं। पर्यावरण में उपस्थित जैविक या अजैविक तत्वों में कुछ उसके अनुकूल एवं कुछ उसके प्रतिकूल थे। अन्य समस्त प्राणियों में मानव अधिक बुद्धिमान एवं चेतना सम्पन्न होने के कारण अपने बौद्धिक क्षमताओं के बल पर तमाम हिंसक पशुओं एवं प्राकृतिक अवरोधों पर नियंत्रण स्थापित कर लिया। जिन परिस्थितियों तथा तत्वों पर वह नियंत्रण नहीं भी कर पाया, उनके साथ समायोजन स्थापित कर विकास के पथ पर निरन्तर अग्रसरित होता रहा।

इस रिपोर्ट में यह भी बताया गया है कि उपभोगवादी प्रवृतियों के चलते मानव अधिक से अधिक प्राकृतिक संसाधनों का निरन्तर उपभोग करता चला जा रहा है जो औद्योगिक क्रांति या औद्योगीकरण का परिणाम है।

विगत दो शताब्दियों में विश्व की जनसंख्या में तेजी से वृद्धि हुई है। 1823 में विश्व की आबादी एक अरब थी जो 100 वर्ष बाद 1930 में दो अरब हो गई उसके 30 वर्ष बाद अर्थात् 1960 में विश्व की जनसंख्या 3 अरब हो गई और 15 वर्ष बाद अर्थात् 1975 में 4 अरब हो गई तथा वर्ष 2000 में यह आबादी बढ़कर 5 अरब हो गई। अगर इसी क्रम में वृद्धि होती रही तो 2040 तक विश्व जनसंख्या 12 से 15 अरब हो जायेगी और पृथ्वी पर मानव का भार बढ़ जायेगा।

इसके साथ ही साथ पर्यावरण के प्रदूषण के कारण, कम वर्षा के कारण, पृथ्वी के तापमान में वृद्धि के कारण, ओजोन परत के क्षरण के कारण, परमाण्विक अस्त्रों के प्रयोग के कारण एवं विश्व में तीव्र गति से बढ़ते आतंकवाद के कारण मानव सभ्यता खतरे में पड़ गयी है। इतने परमाणु अस्त्र निर्मित हो चुके हैं कि समस्त पृथ्वी को कई बार विनष्ट किया जा सकता है। यही कारण है कि आईस्टीन जैसे वैज्ञानिक ने यह कहा था कि तृतीय विश्व युद्ध के बारे में तो हम नहीं कह सकते किन्तु अगर चौथा विश्व युद्ध होगा तो वह ईंट पत्थरों से होगा। ऐसी परिस्थिति में इस प्रतिवेदन में मानव सभ्यता को बरकरार रखने के लिये कुछ सुझाव दिये गये जो कि निम्नानुसार हैं–

सुझाव

1. विकास की वर्तमान अवधारणा जिसके द्वारा उपभोगवादी संस्कृति को प्रश्रय दिया जाता है उस पर पुनर्विचार करना आवश्यक है।
2. औद्योगीकरण की वर्तमान प्रक्रिया को इस प्रकार दिशा दिया जाना चाहिए जिससे पर्यावरणीय संतुलन कम से कम विनष्ट हो।
3. बड़े–बड़े बांधों एवं जंगलों की बड़े पैमाने पर कटाई जैसे गतिविधियों पर नियंत्रण आवश्यक है।

4. वर्तमान विकास की प्रक्रिया से आर्थिक विषमता में जो वृद्धि हो रही है उसको दूर करते हुए सामाजिक न्याय पर आधारित विकास की प्रक्रिया संचालित किया जाना चाहिए।
5. विकासशील देशों में तीव्र गति से बढ़ रही जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण आवश्यक है।
6. वर्तमान समस्या के निराकरण के लिये अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एक ऐसा सम्मेलन आयोजित किया जाये जिसमें विश्व के समस्त देशों के शिखर-नीति-निर्माता एवं अन्य सभी वर्गों के प्रतिनिधि सम्मिलित हों।
7. पर्यावरणीय संतुलन कम से कम विनष्ट हो।
8. वर्तमान विकास की प्रक्रिया से आर्थिक विषमता में जो वृद्धि हो रही है उसको दूर करते हुए सामाजिक न्याय पर आधारित विकास की प्रक्रिया को संचालित किया जाना चाहिए।

क्लब ऑफ रोम रिपोर्ट वह पहला अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास था जिसने विश्व जनमत का ध्यान अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरणीय समस्याओं की ओर किया। इस रिपोर्ट के पश्चात् संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रयासों से ब्राजील की राजधानी रियो डी-जेनिरो में पृथ्वी शिखर सम्मेलन आयोजित किया गया और आज विश्व सतत् विकास की जिस प्रक्रिया को आगे बढ़ा रहा है, उसकी दिशा में यह एक महत्वपूर्ण प्रयास था। किन्तु दुभार्ग्यवश आज भी इस प्रतिवेदन के द्वारा जो प्रश्न खड़े किये गये हैं उनके समाधान की दिशा में हम प्रयास नहीं कर पा रहें हैं।

पृथ्वी शिखर सम्मेलन

विकास की वर्तमान प्रक्रिया जिसमें आर्थिक प्रगति के लिये अन्धी दौड़ प्रारम्भ है तथा औद्योगिकीकरण, नगरीकरण तथा पाश्चात्यीकरण की दिशा में सभी विकासशील देश बढ़ना चाह रहे हैं, के कारण विश्व के समक्ष आज अनेक चुनौतियाँ खड़ी हो रही हैं। विकास की प्रक्रिया से एक तरफ आर्थिक प्रगति की दिशा में विश्व अग्रसारित है वहीं दूसरी तरफ अनेक दुष्परिणामों को भी समाज को झेलना पड़ रहा है। सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूप से आर्थिक विकास के कारण विघटन की प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है। तकनीकी दृष्टि से प्राप्त ज्ञान के कारण मानव अधिकाधिक प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करता चला जा रहा है। पृथ्वी पर प्राप्त संसाधनों की भी एक सीमा है। सीमा से अधिक मात्रा में दोहन के परिणामस्वरूप विश्व के समक्ष अनेक पर्यावरणीय संतुलन संबंधी संकट उत्पन्न हो गये हैं। इन्हीं समस्याओं के समाधान के लिये ब्राजील की राजधानी रियो-डी-जोनिरों में विश्व के समस्त देशों के शीर्षस्थ प्रशासनिक एवं राजनीतिक प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमें सभी देशों के प्रतिनिधियों ने पृथ्वी पर जीवन के स्थायित्व को बनाये रखने के लिये क्या किया जाय इस पर विचार किया।

विश्व के समक्ष उत्पन्न समस्याएँ

अपने आदिम युग में जब मानव ने गुफाओं से निकलकर पृथ्वी की सतह पर फैलना प्रारंभ किया तब उसके जीवन की आवश्यकताएँ सीमित थीं। रोटी-कपड़ा और मकान की समस्त समस्याओं का समाधान मानव अपने आस-पास ही उपलब्ध संसाधनों से कर लिया करता था।

प्रारंभिक काल में जनसंख्या भी कम थी और इसके विपरीत प्राकृतिक सम्पदा असीम थी। मानव सभ्यता के विकास यात्रा में प्रथम क्रान्तिकारी मोड़ उस काल में आया जब उसने अग्नि का आविष्कार किया तथा तांबा आदि धातुओं का औजार बनाने में प्रयोग प्रारंभ किया। पेड़ों की छालों से तन ढ़कने एवं पशुओं के आखेट पर निर्भर मानव अब कृषि एवं पशुपालन पर निर्भर हो गया। हजारों वर्षो तक मानव अपने विकास के इसी चरण से गुजरता रहा।

धीरे-धीरे जनसंख्या बढ़ती गई जिससे अब उसकी बढ़ी हुई आवश्यकताओं की पूर्ति प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर हो गई। कृषि क्षेत्र बढ़ाने के लिये वनों का सफाया मंद गति से प्रारंभ हुआ। पशु पालन में वृद्धि के कारण वन क्षेत्र प्रभावित होने लगे तथा वन्य पशुओं के आखेट के चलते उनकी संख्या कम होने लगी। इसी के साथ पर्यावरण मानव छेड -छाड़ के चलते प्रभावित होने लगा। मनुष्य की विकास की यात्रा का दूसरा चरण लोहे एवं भाप के इंजन के साथ प्रारम्भ हुआ। इसके कारण विश्व में अनेक वैज्ञानिक एवं तकनीकी आविष्कार हुए जिससे औद्योगिक क्रांति का युग 17वीं शताब्दी से प्रारंभ हो गया। अब मानव वैज्ञानिक ज्ञान तथा तकनीकी कौशल से युक्त होने के कारण पर्यावरण के साथ बड़े पैमाने पर छेड़छाड़ करने लगा।

सर्वप्रथम 1864 में **जी. पी. मार्श** (G.P. Marsh) ने अपनी पुस्तक *The Man and Nature* में विश्व का ध्यान मानव के हरकतों के चलते पर्यावरण पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों की ओर आकर्षित किया। इसके अलावा R.L. Shalack (शैलाक) (1923) G.V. Jankes and Knite **जैनकेस** एवं **नाईट** (1939) ने भी कुछ इसी प्रकार ध्यान आकर्षित करने का प्रयास किया। **इ. एच. ब्रौन** (E.H. Broun) ने 1970 में प्रकाशित अपने शोध लेख *'Man Shapes the Earth'* में पर्यावरणीय असंतुलन के प्रति ध्यान आकर्षित करने का प्रयास किया। 1987 में प्रकाशित *Brundt Land* प्रतिवेदन तथा 1992 में पृथ्वी शिखर सम्मेलन का प्रतिवेदन एजेण्डा 21 में पूरे विश्व को झकझोर कर रख दिया। आज समस्त विश्व जनमत इस बात से पूर्णतः सहमत है कि मनुष्य अपने विभिन्न क्रियाओं द्वारा पर्यावरण के अनेक स्तरों को प्रभावित कर रहा है।

स्थल मण्डल से सम्बन्धित प्रमुख समस्याएँ भू-क्षरण में वृद्धि सड़कों, नहरों, नालों इत्यादि से धरातल के स्वाभाविक स्वरूप में परिवर्तन नगरीकरण खनिज पदार्थों के उत्खनन एवं पत्थर उद्योग के भू-गर्भीय परिवर्तन के रूप में दृष्टिगत हो रहे हैं।

जल–मण्डल में पड़ने वाले प्रमुख प्रभाव नदियों व झीलों के जल का प्रदूषित होना। औद्योगिक इकाइयों के अवशिष्ट पदार्थों का नदियों में प्रवाहित किया जाना। रासायनिक दवाओं एवं कीटनाशकों के प्रयोग से भू-गर्भित जल का प्रदूषित होना। महानगरों के सीवरों में बहने वाले मल-मूत्र से जल का प्रदूषित होना, तीर्थ-स्थल पर लाखों के स्नान से जल का दूषित होना।

इसी प्रकार वायु–प्रदूषण के अन्तर्गत औद्योगिक प्रतिष्ठानों से निकले हुए धुएँ एवं वर्तमान समय में सबसे प्रमुख समस्या के रूप में विभिन्न गैसों का वायु मण्डल में मिलना है। वैज्ञानिकों का ध्यान तब इस प्रदूषण की ओर आकृष्ट हुआ जब पृथ्वी के चारों तरफ रक्षा कवच के रूप में अवस्थित ओजोन परत का क्षरण होना ज्ञात हुआ। इसके लिये (Refirgration) शीतलन की प्रक्रिया में उपयोगी गैस **क्लोरो फ्लोरो कार्बन** को उत्तरदायी माना गया है। इसी प्रकार विश्व के सभी बड़े महानगरों में वाहनों से निकले हुए धुएं के कारण वायु प्रदूषित हो चुका है। इसके साथ-साथ वर्तमान समय में एक सबसे प्रमुख समस्या संसाधनों के अभाव को लेकर उत्पन्न हो गई है। इसके पीछे प्रमुख रूप से संसाधनों के दुरुपयोग को उत्तरदायी ठहराया गया है। उदाहरण के लिये ऊर्जा के विभिन्न संसाधन जैसे कोयला, पेट्रोल, डीजल इत्यादि को अगले दो दशक में समाप्त हो जाने की समस्या बताया जा रहा है। इस प्रकार भावी पीढ़ी के समक्ष कई चुनौतियाँ खड़ी हो गई हैं।

पृथ्वी शिखर सम्मेलन का आयोजन

ब्राजील की राजधानी रियो-डी-जिनिरो में 3 जून से 14 जून 1992 में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा पर्यावरण एवं विकास-पृथ्वी शिखर सम्मेलन का आयोजन किया गया। यह सम्मेलन संयुक्त राष्ट्र संघ के अब तक आयोजित सभी सम्मेलनों से बड़ा था। इस सम्मेलन में 100 से अधिक शासनाध्यक्ष एवं मंत्रीगण तथा अन्य बहुत से महत्वपूर्ण पदाधिकारी के साथ ही 172 देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। इसके अलावा कई हजार स्वयंसेवी संस्थाओं के सदस्यों के अलावा 8 हजार से अधिक पत्रकारों ने भी भाग लिया था। यह सम्मेलन इस दृष्टि से भी अभूतपूर्व था कि इसमें विकास के वर्तमान प्रक्रिया को चुनौती देते हुए ऐसे विकास की स्थापना पर बल दिया गया जो स्थायित्व के साथ ही साथ सार्वभौमिक सह–अस्तित्व एवं भावी पीढ़ियों की आवश्यकताओं को भी ध्यान में रख कर बनाया जाये।

इस सम्मेलन में पर्यावरणीय सुरक्षा के साथ-साथ सतत् विकास के ऊपर विशेष बल दिया गया। इसके लिये समग्र विकास हेतु एक एजेण्डा-21 तैयार किया गया। इसके अन्तर्गत 115 कार्यक्रमों को लक्ष्य क्षेत्र के रूप चिह्नित करते हुए उन्हें प्राथमिकता के स्तर पर सूचीबद्ध किया गया। इस प्रकार इस शिखर सम्मेलन का प्रमुख एजेण्डा 21 है।

शिखर सम्मेलन की प्रमुख विशेषताएँ

इस शिखर सम्मेलन के अन्तर्गत सबसे प्रमुख रूप से पर्यावरणीय समस्याओं के निराकरण पर ध्यान आकर्षित किया। दूसरी महत्वपूर्ण उपलब्धि यह रही है कि विश्व के सभी देशों के प्रतिनिधियों ने पारस्परिक सहयोग के द्वारा इस समस्या के समाधान के लिये प्रयास करने के लिए आश्वासन दिया। इनके अलावा शिखर सम्मेलन के अन्तर्गत सभी विकासशील देशों ने विकसित देशों का यह कर्तव्य निर्धारित किया कि वे अतिरिक्त सहायता देकर वैश्विक स्वच्छता एवं पर्यावरणीय सुरक्षा को प्रोत्साहन दें; क्योंकि पर्यावरणीय सन्तुलन को बिगाड़ने में विकसित देशों का सबसे ज्यादा योगदान रहा है। इस शिखर सम्मेलन में निम्नांकित महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्राप्त की गई–

1. विकसित देशों के दायित्वों का निर्धारण।
2. सतत् विकास के प्रादर्श के रूप में एजेण्डा-21 का निर्माण।
3. वनों की सुरक्षा के लिये एक स्पष्ट नीति का निर्धारण।
4. सतत् विकास के लिये आयोग के गठन का सुझाव।
5. समय-समय पर सेमिनार एवं सम्मेलनों के आयोजनों का सुझाव।
6. रियो घोषणा–पत्र का निर्माण एवं सर्वसम्मति से पारित किया जाना।

उपरोक्त कार्यकमों के कियान्वयन के लिए निम्नांकित निर्णय लिये गये

1. एजेण्डा 21 के विषयों को कियान्वयन के लिए सभी देशों में समझौता कराना।
2. बड़े अधिकारियों; जैसे-शासनाध्यक्षों एवं राष्ट्राध्यक्षों को इन सिद्धांतों के कियान्वयन हेतु कटिबद्ध करना।
3. शासन और स्वसेवी संस्थाओं के मध्य परस्पर सहयोग के साथ काम किये जाने का निश्चय करना।

एजेण्डा 21 के प्रमुख तत्व

इसके अन्तर्गत निम्नांकित प्रमुख क्षेत्रों को सम्मिलित किया गया है

1. सतत् विकास के लिये इस प्रकार प्रयास करना जिसे सभी ने माना हो तथा जिससे प्रकृति एवं समाज के बीच सामन्यस्य पूर्ण वातावरण निर्मित हो सके।
2. अपने पर्यावरण की सुरक्षा के लियें एक हरित आन्दोलन चलाना जिससे कि देश की पर्यावरणीय सुरक्षा के साथ-साथ राष्ट्रीय सीमाओं के बाहर भी किसी प्रकार का पर्यावरण का प्रदूषण न हो सके।
3. स्थानीय राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरणीय नीतियों का निर्धारण करना।
4. विश्व के तापमान में हो रही वृद्धि को कम करने के लिये पर्यावरणीय स्तर पर प्रयास करना।

5. जैव विविधता की सुरक्षा के लिये प्रयास करना।
6. समुद्र तल में वृद्धि को नियंत्रित करने लिये प्रयास करना।
7. वायु-मण्डल, जल-मण्डल, थल-मण्डल को प्रदूषण मुक्त बनाने एवं पर्यावरण परिवर्तन को नियंत्रित करने हेतु प्रयास करना।
8. समुद्री पर्यावरण को रोकना।
9. ओजोन परत के क्षरण को रोकने हेतु प्रयास करना।
10. कृषि योग्य भूमि के परत-भूमि में हो रहे परिवर्तन को रोकना।
11. वन्य जीवों की सुरक्षा के प्रयास करना।
12. हानिकारक मादक पदार्थों एवं खतरनाक वस्तुओं को नियंत्रित करना।
13. जनसंख्या विस्फोट को नियंत्रित करना।
14. पर्यावरण के संरक्षण के लिये प्रयास करना।
15. ऊर्जा संकट को दूर करने के लिये प्रयास करना।
16. पर्वतों को व्यवस्था को संतुलित बनाना।
17. स्वच्छ जल की उपलब्धता को बढ़ाना।
18. गरीबी निवारण के लिये प्रयास करते हुए समता मूलक समाज की स्थापना करना।
19. तकनीकी विकास के लिये तकनीकी ज्ञान का प्रसार।
20. महिलाओं की सहभागिता में वृद्धि एवं महिला सशक्तिकरण को प्रोत्साहन
21. देशी दवाइयाँ एवं अन्य वस्तुओं को उनके उपयोगिता के अनुसार प्रोत्साहित करना।

उपर्युक्त बिन्दुओं के विश्लेषण से स्पष्ट है कि एजेण्डा-21 के अन्तर्गत सतत् विकास से सम्बन्धित समस्त विषयों को समाहित कर लिया गया है, इस प्रकार एजेण्डा 21 स्वयं में सतत् विकास का एक मूल या ब्ल्यू प्रिण्ट (Blue Print) है।

सतत् विकास का तात्पर्य

सतत् विकास एवं प्रत्यय का सर्वप्रथम उद्भव एवं विकास पर्यावरण एवं विकास पर अध्ययन के लिए **ब्रुण्ट लैण्ड की अध्यक्षता में गठित विश्व आयोग** का प्रतिवेदन जिसे **'हमारा साझा भविष्य'** के नाम से जाना जाता है, में प्राप्त होता है। इस आयोग ने ही सर्वप्रथम यह सुझाव दिया था कि विकास की प्रक्रिया ऐसी होनी चाहिए जिसमें वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं की पूर्ति भावी पीढ़ी की आवश्यकताओं की कीमत पर नहीं होना चाहिए।

विकास क्या है इसकी चर्चा पूर्व में की जा चुकी है। यहाँ प्रश्न मात्र सातत्यता का है अर्थात् वह विकास जो टिकाऊ हो और निरंतर जारी रहे। इस विश्व में सभी वस्तुएँ

निश्चित अवधि के बाद विनाश के गर्त में समाहित हो जाती हैं। कोई भी वस्तु अमर नहीं होती फिर सातत्य की चर्चा करना एक तरह से निराधार है, ऐसा प्रतीत होता है। इसके बावजूद अनेक वस्तुएँ बराबर बनी रहती हैं; जैसे—एक नदी का जल निरंतर समुद्र में विलीन हो रहा है, किन्तु उसके स्रोत से निकलने वाले जल के कारण नदी की सातत्यता परिलक्षित होती है। इसी प्रकार पौधा उगता है, बढ़ता है, फूलता है, फलता है और फिर विनष्ट हो जाता है। किन्तु उसके बीज से नये पौधो का सृजन होता रहता है अर्थात् सतत् वहीं है जिसका स्रोत सदैव जारी रहे।

सतत् विकास अंग्रेजी के (Sustainable Development) शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। जिसका तात्पर्य है ऐसा विकास जिसमें स्थायित्व हो इसको कुछ अन्य नामों से भी जाना जाता है; जैसे—स्थायी विकास, टिकाऊ विकास, अक्षय विकास, वैकल्पिक विकास इत्यादि। इसमें विकास की वर्तमान समृद्धि एवं सुख को इस प्रकार नियोजित ढंग से प्राप्त करने के लिए प्रयास किया जाता है। जिससे न तो भावी पीढ़ी के लिए संसाधनों की कमी का खतरा पैदा हो और न ही पृथ्वी की पारिस्थिति असंतुलित हो। इस प्रकार सतत विकास की प्रक्रिया के अंतर्गत निम्नलिखित तथ्य समाहित है

1. सुख — वर्तमान एवं भावी पीढ़ियों हेतु।
2. सातत्यता — संसाधनों की ।
3. समय — दीर्घकालिक अस्तित्व का।
4. संरक्षण — प्रकृति एवं जैव विविधता की।
5. परस्पर पूरकता — प्रकृति एवं मानव के मध्य।
6. सुरक्षा — पारिस्थितिकीय तंत्र की ।
7. निरोध — वनों के विनाश, बड़े बाँधों के निर्माण एवं कृषि में रासायनिक पदार्थों के प्रयोग का।
8. स्थापना — सामाजिक न्याय की।
9. मान्यता — परम्परागत वैज्ञानिक एवं कल्याणकारी मूल्य की ।
10. उपयोग — अनुप्रयुक्त प्रौद्योगिकी (Appropriate Technology)का।
11. नियंत्रण — ऐन-केन-प्रकारेन प्राप्ति के लालच एवं जनसंख्या विस्फोट की प्रक्रिया पर।
12. प्रसार — प्रेम, सद्भावना, दया, करुणा इत्यादि सकारात्मक मनो-भावों का।
13. आत्मनिर्भरता — स्वास्थ्य, शिक्षण, आजिविका इत्यादि की।

सतत् विकास के मूल—तत्व

सतत् विकास के बारे में वर्तमान समय में समस्त विश्व में निरन्तर प्रयास जारी है। उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि सतत् विकास किसी एक क्रिया का परिणाम न

होकर अनेक आयामों में किया गया प्रयास है। इसकी विशेषताओं के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि सतत् विकास के लिये निम्नांकित तत्वों का होना आवश्यक है–

1. निरन्तर आर्थिक विकास का होना।
2. सामाजिक न्याय पर आधारित विकास।
3. व्यक्ति केन्द्रित विकास की प्रक्रिया।
4. भावी पीढ़ियों पर पड़ने वाले परिणामों का उनके अनुकूल होना।
5. गरीबी बेरोजगारी, अशिक्षा इत्यादि समस्याओं का निराकरण।
6. पर्यावरणीय संतुलन का बना रहना।
7. प्रदूषण मुक्त विश्व की स्थापना।
8. पर्यावरण के संरक्षण के लिए जनसंख्या नियंत्रण के लिये प्रयास।
9. संसाधनों का समुचित उपयोग।

सतत विकास की दिशा में किये गये प्रयास

1992 के पृथ्वी शिखर सम्मेलन के पश्चात् विश्व जनमत इस बात पर सहमत दिखाई दिया कि अभी तक का आर्थिक विकास का प्रयास पर्यावरण की कीमत पर किया गया। इसके बावजूद विकास की उपलब्धियाँ आम जनता तक नहीं पहुँच पायी है। विकासशील देशों में असंख्य लोग भूखे नंगे एवं बदतर जिंदगी जीने के लिये मजबूर हैं। सभी देशों ने अपने-अपने स्तर पर प्रयास करना प्रारम्भ कर दिया है। इस सन्दर्भ में अनेक अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियों, सम्मेलनों एवं पर्यावरण से सम्बन्धित अधिनियमों का प्रयोग विभिन्न देशों में किया जा चुका है। इसके अलावा वन्य जीवों की संरक्षण राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण प्रदूषण रोकने के लिये तथा इससे सम्बन्धित समस्याओं के निराकरण के लिए विकसित देशों ने विकासशील देशों के लिये सहायता देना प्रारंभ कर दिया है। इसी प्रकार तकनीकी विकास को जन–सामान्य तक पहुँचाने के लिये उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण की प्रक्रिया को तेज कर दिया गया।

निष्कर्ष

सतत् विकास वर्तमान समय में एक सर्वमान्य आवश्यकता के रूप में प्रतिपादित हो चुका है यह सत्य है कि हम अनेक समस्याओं का सामना कर रहे हैं। विश्व की जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ रही है, विभिन्न संसाधनों के स्रोत निरन्तर समाप्त हुए जा रहे हैं। वनों की अंधाधुन्ध कटाई के चलते वन समाप्त हो रहे हैं। अनेक जातियाँ विलुप्त होती जा रही हैं। ऊसर और मरूस्थल में निरंतर वृद्धि हो रही है। कृषि योग मृदा का निरन्तर क्षरण हो रहा है। विश्व की अधिकांश जनता मादक दृव्यों के सेवन सम्वन्धी लत एवं पदार्थो के चपेट में आ गई है। ओजोन परत का क्षरण होता जा रहा है। ग्रीन हाउस

इफेक्टर (Green House Effector) के कारण पृथ्वी के ताप में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। सामाजिक पर्यावरण आज दूषित होता जा रहा है। चारों तरफ आज आतंक का बोलबाला है। विश्व में जनता आज अघोषित युद्ध की पीड़ा को झेल रही है। इन समस्त समस्याओं के समाधान के लिए वर्तमान में जिस अवधारणा का उद्भव और विकास किया गया है वह सतत् विकास है। किन्तु सतत् विकास की जानकारी मात्र से समस्याओं का समाधान नहीं हो सकता है। इसके लिये समस्त नागरिकों की इन समस्याओं के निराकरण के लिये शारीरिक, आर्थिक एवं मानसिक सहभागिता का होना आवश्यक है। साथ-ही-साथ राष्ट्रीय स्तर पर सरकारों के द्वारा भी इसके लिये हार्दिक इच्छा होना आवश्यक है। किन्तु सबसे प्रमुख बात यह है कि केवल शासकीय प्रयासों से समस्या का निराकरण सम्भव नहीं है। अतः गैर शासकीय अथवा स्वयंसेवी संस्थाओं का सकारात्मक सहयोग होना आवश्यक है। अन्त में सबसे प्रमुख दायित्व अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के रूप में संयुक्त राष्ट्र संघ (U.S.A.) का है जो इसके लिए विश्व जनमत तैयार करने में सहयोग प्रदान कर सकता है।

5

जे. सी. कुमारप्पा का आर्थिक सातत्य का सिद्धांत

भारत में अत्यन्त प्राचीन काल से पर्यावरण एवं मनुष्य के पारस्परिक सम्बन्धों तथा मानव के अस्तित्व के सातत्यता पर चिंतन किया गया है। उसी क्रम में स्वतन्त्रता से पूर्व द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान महात्मा गाँधी के प्रिय शिष्य जे. सी. कुमारप्पा के द्वारा इसी कड़ी में आगे विचार करते हुए वर्तमान क्षण भंगुर संसार में आर्थिक सातत्यता की वकालत की गई है। इस संदर्भ में जे. सी. कुमारप्पा ने एक पुस्तक की रचना की है जिसका नाम है – *"Economy of Permanence"* इस पुस्तक की रचना उन्होंने जबलपुर सेण्ट्रल जेल में किया था। यह पुस्तक 1945 में प्रथम बार प्रकाशित हुई; जिसकी प्रस्तावना में महात्मा गाँधी ने लिखा है कि, हमारे ग्रामीण उद्योगों के डॉक्टर कुमारप्पा के द्वारा यह बताया गया है कि "उनके बताये गये रास्ते पर चल कर ही हम आर्थिक सातत्यता की स्थिति में पहुँच सकते हैं" यही कारण है कि जे. सी. कुमारप्पा की इस पुस्तक की ईसा मसीह पर लिखी गई पुस्तक *"Practice and Principles of Jesus"* से तुलना की गई है। इस पुस्तक का तब और महत्व बढ़ जाता है जब आधी शताब्दी के पश्चात् आज समस्त विश्व इसी रास्ते पर चलने के लिये बाध्य हो गया है।

जे. सी. कुमारप्पा, के आर्थिक सातत्य का सिद्धान्त

जे. सी. कुमारप्पा ने अपने आर्थिक सातत्य के सिद्धांत में इस बात पर विशेष बल दिया है कि आज मानव की समस्त समस्याओं की जड़ में कहीं न कहीं से उसकी स्वच्छंदता एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। मानव ने अपनी क्षुद्र वासनाओं की पूर्ति के लिये प्राकृतिक नियमों का इस प्रकार से उल्लंघन किया है कि आज समस्त विश्व विकास के स्थान पर विनाश के कगार पर खड़ा है। इसके हल के लिए हमें प्रकृति से ही शिक्षा प्राप्त करना आवश्यक है। इस सिद्धांत की प्रमुख बातें निम्नानुसार प्रस्तुत की जा सकती हैं–

सातत्य का तात्पर्य

सबसे पहले यह प्रश्न उपस्थित होता है कि आर्थिक सातत्य क्या है ? *(What is Permanence?)* इसके ऊपर हम विचार करते हैं तो हम पाते है कि इस जगत की

समस्त वस्तुएं विनाशशील हैं। कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जो अन्तकाल तक रहे, सिर्फ ईश्वर को छोड़कर। अतः जब इस क्षण भंगुर जगत के सन्दर्भ में सातत्य की बात की जाती है तो उसका तात्पर्य होता है कि सापेक्षता की दृष्टि से अधिक देर तक टिकाऊ वस्तु।

चूंकि कोई भी वस्तु हमेशा के लिए टिकाऊ नहीं है इसलिए प्रकृति के अनुसार जिस प्रकार निरन्तरता एक वस्तु के निरन्तर उद्भव के साथ बनी रहती है उसी प्रकार किसी भी क्षेत्र में बने रहने से सातत्य सिद्ध होता है।

प्रकृति के सातत्यता का सिद्धान्त

प्रकृति में सातत्यता कार्य एवं पारिश्रमिक के सिद्धान्त पर आधारित है। प्रकृति में कई कार्य इसलिए हो रहे हैं, क्योंकि उन कार्यों के साथ ही उनको पारिश्रमिक भी प्राप्त होता है। उदाहरण के लिये मधुमक्खी और तितली रस के लिये एक फूल से दूसरे पर जाती हैं तथा पारिश्रमिक के रूप में फूलों को परागित करती हैं।

प्रकृति में आर्थिक व्यवस्था के प्रकार

प्रकृति में परस्पर सहायता के सिद्धान्त पर आधारित व्यवस्थाएँ सदैव दृष्टिगत नहीं होती हैं जे. सी. कुमारप्पा ने प्रकृति के सिद्धांतों के आधार पर ही आर्थिक व्यवस्थाओं का स्वरूप निर्धारित किया है। इनके अनुसार प्रमुख आर्थिक व्यवस्थाओं का स्वरूप निम्नांकित है

1. **परपोषी अर्थव्यवस्था**—कुछ अर्थ—व्यवस्थाएँ दूसरी अर्थव्यवस्थाओं पर पूर्णतः निर्भर हो जाती हैं; जैसे—प्रकृति में कुछ लताएँ या बेल होती हैं जो जिस वृक्ष में उगती हैं, उस वृक्ष से ही अपना भोजन प्राप्त कर अपना विकास करती हैं और अन्त में वह वृक्ष सूख जाता है। इस प्रकार की अर्थव्यवस्था का उदाहरण ब्रिटेन है, जिसने अपने सभी उपनिवेशों का पूर्ण शोषण करके उनके विकास को अवरूद्ध कर दिया और स्वयं विश्व का सबसे विकसित राष्ट्र बन गया। उदाहरण के लिये इसी प्रकार भेड़ या बकरी घास खाती है और नदी का पानी पीती है, जबकि बाघ इन दोनों का खून पीकर उसके अस्तित्व को ही समाप्त कर देता है।

2. **शोषण की अर्थव्यवस्था**—प्रकृति में इस प्रकार की अर्थव्यवस्था का उदाहरण पाया जाता है; जैसे बंदर आता है, वृक्ष पर से फल तोड़ता है, खाता है, और उसकी डालियों को भी तोड़कर नष्ट कर देता है। इस प्रकार की अर्थव्यवस्था में यद्यपि पूर्ण विनाश तो नहीं होता किन्तु बदले में कुछ लेने या प्राप्त करने के उपरान्त कुछ भी श्रम नहीं करता और बिना परिश्रम के ही दूसरे के परिश्रम का फल खाता है।

3. **उद्यमिता की अर्थव्यवस्था**—प्रकृति में कुछ ऐसे भी जीव हैं जो कुछ अगर वह कहीं से लेते या प्राप्त करते हैं उनके बदले में उन्हें कुछ प्रदान भी करते हैं। उदाहरण

के लिये, जैसे–मधुमक्खी फूलों से रस प्राप्त कर शहद बनाती है, इसके लिए वह एक फूल से दूसरे फूल में बैठती हैं। जिससे उसे शहद के लिये रस तो प्राप्त होता ही है, साथ ही फूलों का परागण भी मधुमक्खी द्वारा हो जाता है। जिससे दोनों को लाभ होता है। इसे उद्यमिता की अर्थव्यवस्था कहा गया है।

4. सामूहिकता की अर्थव्यवस्था–इस प्रकार की अर्थव्यवस्था में सामूहिक रूप से उत्पादन किया जाता है तथा सामूहिक रुप से उपभोग भी किया जाता है। उदाहरण के लिये प्रकृति में चीटियाँ सामूहिक रूप से भोजन एकत्रित करती है तथा बरसात के दिनों में सामूहिक रूप से खाती भी है। साम्यवादी देशों जैसे चीन और रूस आदि की अर्थव्यवस्था इसी सिद्धान्त पर आधारित हैं।

5. सेवा की अर्थव्यवस्था–इस प्रकार की अर्थव्यवस्थाएं मुख्य रूप से सेवा की भावना पर आधारित होती हैं। इसके अन्तर्गत जो कुछ भी सहायता की जाती है उसके बदले में वर्तमान में अथवा भविष्य में कुछ भी प्राप्त करने की आशा के बिना ही की जाती हैं, उदाहरण के लिये मादापक्षी अपने बच्चों के पोषण हेतु जंगल से खाद्य सामग्री खोज कर लाती है जिसके पीछे उसका कोई स्वार्थ नहीं होता और न इसके पीछे किसी भी प्रकार की हिंसा होती है। इसीलिये इसे अहिंसक अर्थव्यवस्था के नाम से भी पुकारा जाता है।

आर्थिक सातत्यता के लिये इसी प्रकार की *Mother Economy or Service Economy* ही आधार प्रदान कर सकती है।

मनुष्य एवं उसकी स्वच्छंदता

समस्त प्राणियों में मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जिसको अपनी इच्छानुसार कार्य करने का अवसर प्राप्त होता है। प्रत्येक मनुष्य में शरीर के पोषण के लिये भूख लगती है। भोजन को पचाने के लिये प्यास लगती है। अच्छे या खराब भोजन को पहचानने के लिए गंध की व्यवस्था है। इसी प्रकार अपने ही समान, नये जीव की उत्पत्ति के लिये प्रजनन की आवश्यकता है। मानव कल्पनाशीलता तथा सृजनशीलता भी इत्यादि मूलप्रबृतियों के संबंध में स्वच्छंदता पूर्ण व्यवहार करने लगा है। उदाहरण के लिये जब इच्छा हुई तब खा लिया, पानी पीने के स्थान में शराब इत्यादि मादक पदार्थो का सेवन किया सूँघने की इन्द्रिय का प्रयोग तम्बाकू इत्यादि नशीली वस्तुओं को सूंघने में किया, इसी प्रकार अन्य सुखों का भी दुरुपयोग किया। कल्पनाशीलता एवं सृजनशीलता के गुणों का मादक पदार्थो का सेवन करने के लिए दरुपयोग किया, जिसके परिणामस्वरूप मानव स्वयं अपने ही हाथों अपना विनाश कर रहा है।

मानव विकास के चरण

जे. सी. कुमारप्पा के अनुसार मानव का विकास पूर्व की अर्थव्यवस्थाओं के सदृश्य ही रहा है। प्रारम्भिक अवस्था में मानव परपोषी था। दूसरी, अवस्था में धीरे-धीरे शोषण

की अर्थव्यवस्था के अनुसार कार्य करता था। तीसरी अवस्था में मानव उद्यमिता की अर्थव्यवस्था के आधार पर कार्य करने लगा। जिसमें वह अपने स्वार्थों के लिये एक निश्चित लाभ लेकर परिश्रम से कार्य करना प्रारम्भ किया। चौथी स्थिति में वर्तमान समय में सामूहिकता की अर्थव्यवस्था के रूप में कार्य कर रहा है, जिसमें समस्त परिवार के सुख–दुख के लिये कार्य करता है तथा परस्पर सहकारिता का रूप देखने को मिलता है इसके अन्तर्गत अब समस्त समूह का हित व्यक्तिगत हित के स्थान पर प्रभावी हो गया है। वर्तमान समय में भी कुछ लोग केवल दूसरों के हित के लिये बिना स्वार्थ ही कार्य करते हैं। यह एक आदर्श स्थिति है जो पूर्ण रूप से अभी प्राप्त नहीं हुई है समाज भी उपरोक्त अवस्थाओं से गुजरता हुआ आगे बढ़ रहा है समाज में भी प्रारम्भ में या आदिम समाज में मानव पशुवत जीवन व्यतीत करता था। धीरे–धीरे वर्तमान मानवीय अवस्थाओं को प्राप्त किया है किन्तु अभी तक अन्तिम अवस्था जिसे सेवा की अवस्था या आध्यात्मिक अहिंसक अवस्था कहा जाता है। उस तक समाज अभी नहीं पहुँच पाया है। महात्मा गांधी भी इस प्रकार के राष्ट्रीय स्तर के व्यवस्था के पक्षधर थे, जिसमें अहिंसक अर्थव्यवस्था स्थापित हो सके और तभी सच्चे अर्थों में रामराज की स्थापना होगी।

जीवन जीने की कला और अस्तित्व

जे. सी. कुमारप्पा के अनुसार जीवन अमूल्य है और हमारा अस्तित्व इस जीवन की जीने की कला पर निर्भर करता है। प्रत्येक व्यक्ति को जीने की स्वतन्त्रता है किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वह इसके स्वच्छंदता के मार्ग पर चले उदाहरण के लिये, आवास ऐसा बनाये जो उसके लिए सुविधाजनक हो। इसी प्रकार भोजन और वस्त्र के मामले में भी सभ्यता के नाम पर किसी अन्य समाज का अन्धानुकरण करना हमारे अस्तित्व के लिए खतरा पैदा कर सकता है।

जीवन स्तर

प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तिगत जीवन इस प्रकार संचालित होना चाहिए कि समाज द्वारा निर्धारित मापदण्डों के अनुसार अपना वह जीवन गुजार सके। एक आदर्श जीवन स्तर वह है, जिसमें व्यक्ति के रोटी, कपड़ा, मकान, स्वास्थ्य, शिक्षा एवं जीविकोपार्जन की सुविधाएँ मुहैया हो सकें जिसके कारण व्यक्ति और समाज दोनों का कल्याण हो सके। भिन्न-भिन्न देशों में जीवन स्तर अलग-अलग ढंग से निर्धारित किया गया है। हर व्यक्ति जिस समाज में रह रहा है उस समाज के मापदण्डों के अनुरूप उसे जीवन व्यतीत करना आवश्यक है।

कार्य

वर्तमान में जनसंख्या में तीव्र वृद्धि के कारण बहुत से लोग मारे–मारे फिरते हैं। प्रकृति में प्रत्येक प्राणी अपना कार्य निरन्तर करता रहता है, उनकी तुलना में मानव

अपनी स्वच्छंदता के चलते कार्य के लिये परेशान रहता है। प्रकृति का कोई भी काम करता है वह न छोटा है और न बड़ा है, किन्तु मानव ने जब से अपने को एक बुद्धिजीवी स्वीकार किया है, तब से उसने कार्य को स्तर के आधार पर विभाजित कर दिया है। इसके साथ ही वर्तमान समय में मानव द्वारा दैनिक कार्यों को इस प्रकार से व्यवस्थित कर दिया गया है कि उसे एक भी मिनट फुरसत से बैठने की या खेलने की सुविधा नहीं है। ऐसी स्थिति में आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक कार्य की आवश्यकता को समझे।

धन का विभाजन

प्राचीन काल में प्रत्येक व्यक्ति के कार्य का विभाजन किया गया था। समाज में चार प्रकार के कार्य करने पड़ते थे शिक्षण प्रशिक्षण का कार्य, सुरक्षा का कार्य, उत्पादकता से सम्बन्धित कार्य एवं सेवा से सम्बन्धित कार्य इसी के आधार पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र चार प्रकार के वर्गों का निर्धारण समाज में किया गया था किन्तु बाद में यह जातिगत एवं वंशानुगत हो गया और बाद में कुछ जातियों द्वारा अपने को कार्य आधारित श्रेष्ठता एवं बाद में जातिगत श्रेष्ठता के अनुसार प्रतिष्ठित किया गया। इस प्रकार शोषण की प्रकृति का उद्‌भव एवं विकास हुआ। पंहले समाज से सम्बन्धित कार्य के लिये पारिश्रमिक की प्रत्याशा नहीं रखी जाती थी। एक वैज्ञानिक मानवता के कल्याण के लिये निःस्वार्थ भाव से दुरूह से कार्य करता है। इसी प्रकार एक माँ जब अपने बच्चे को दुग्धपान कराती है तो वह भी निःस्वार्थ होता है लेकिन जब बच्चे को सिन्थेटिक दूध बोतल के द्वारा पिलाया जाता है तो उसके पीछे बच्चे के लिये चिन्ता के बजाए अपने स्वरूप की चिन्ता अधिक रहती है। इस प्रकार जब श्रम को सम्मान समझा जाता है तथा उसका कहीं से शोषण नहीं होता है, तभी एक सेवा की अर्थव्यवस्था स्थापित होती है।

उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि वर्तमान अर्थव्यवस्था स्थाई नहीं है। सातत्य युक्त अर्थव्यवस्था स्थापित करने के लिये उपरोक्त विशेषण के परिप्रेक्ष्य में जे.सी. कुमारप्पा ने एक प्रादर्श प्रस्तुत किया है। उनके आर्थिक सातत्य के प्रादर्श का संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

नियोजित अर्थव्यवस्था

आर्थिक सातत्य की प्राप्ति के लिये सबसे पहली आवश्यकता एक नियोजित कार्य योजना तैयार करने की है। नियोजन का तात्पर्य है, समस्याओं के समाधान के लिये एक प्रारूप तैयार करना, जिसमें इस बात का उल्लेख हो कि क्या करना है, किसके लिये करना है, कौन-सी गतिविधियाँ होगी, कौन-से उद्‌देश्य होगें और क्या परिणाम प्राप्त होंगे भारत का नियोजन पाश्चात्य देशों के नियोजन जैसा न होकर यहाँ के परिस्थितियों के अनुरूप होना चाहिए। उदाहरण के लिए जे. सी. कुमारप्पा के अनुसार रोटी और कपड़ा सबसे प्रमुख समस्या है, जिस पर प्राथमिकता से विचार किया जाना चाहिए।

कृषि

जे. सी.कुमारप्पा के अनुसार कृषि वह माध्यम है जो हमारी प्रमुख समस्या रोटी और कपड़ा को हल करने में सहायक सिद्ध हो सकती है। उनका कहना है कि कृषि का उत्पादन निम्नांकित दो बिन्दुओं को ध्यान में रख कर ही किया जाना चाहिए। पहला स्थानीय स्तर पर अपने भोजन और अन्य मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति इससे हो रही हो। दूसरा इसके माध्यम से ग्रामीण उद्योगों को कच्चे माल की उपलब्धता हो न कि शहरों की बड़ी फैक्टियों को तीसरी ऐसी व्यवसायिक उत्पादन जो स्वास्थ्य या अन्य दृष्टिकोण से हानिकारक हो पर प्रतिबन्ध होना चाहिए, जैसे--तम्बाकू इत्यादि का उत्पादन आदि।

विनिमय

जे. सी. कुमारप्पा ने विनिमय की व्यवस्था के लिये एक बहुउद्देश्यीय सहकारी समितियों की स्थापना का सुझाव दिया है। ये सहकारी समितियाँ न केवल ग्रामीण उद्योगों के विकास में सहायक होगी अपितु ग्रामीणों में सामूहिक प्रयास करने के लिये प्रेरणा भी प्रदान करेगी। इनके अनुसार एक बहुउद्देश्यीय सहकारी समिति को निम्नांकित कार्य करने पड़ेगें–

1. कच्चे माला का उद्योगों के लिए संग्रह करना एवं ग्राम की आवश्यकतानुसार अन्न का संग्रह करना।
2. गाँव के अतिरिक्त उत्पादों को बाजार तक पहुँचाना एवं बाजार से लोगों के लिए आवश्यक वस्तुओं को लाना।
3. लोगों के लिये बीज, खाद्य उन्नतशील यंत्र की आपूर्ति एवं वितरण करना।
4. क्षेत्र के लिये एक सार्वजनिक स्थल का निर्माण करना।
5. सरकार एवं जनता के बीच एक कड़ी का काम करना।
6. सहकारिता द्वारा किये जाने वाले कार्य

जे. सी. कुमारप्पा ने गाँव में कुछ ऐसे कार्यों को भी करने के लिये सुझाव दिया है जो सहकारिता के द्वारा किये जा सकते हैं।

1. बैंक के रूप में कार्य करना ।
2. धन का बैंक।
3. खाद्यान्नों का बैंक।
4. खाद्यो का बैंक।
5. बीज का बैंक।
6. अन्न का बैंक।
7. कच्चे मालों का परीक्षण।
8. यंत्रों एवं औजारों की पूर्ति।
9. जिले स्तर पर प्रदर्शन केन्द्र की स्थापना।

ग्रामीण उद्योगों की स्थापना

जे. सी. कुमारप्पा के अनुसार गाँवों में सहकारिता के माध्यम से अनेक छोटे–बड़े उद्योगों की स्थापना की जा सकती है; जैसे–

1. चालव मिल (Rice Mills) स्थापना।
3. पत्थर तोड़ने से सम्बन्धित उद्योग।
4. तेल घानी उद्योग।
5. गुड़ बनाने का उद्योग।
6. मधुमक्खी पालन।
7. सूती एवं ऊनी वस्त्र उद्योग।
8. चमड़ा उद्योग।
9. प्रकाश, कागज निर्माण उद्योग।
10. बर्तन निर्माण उद्योग।
11. सफाई एवं खाद्य सम्बन्धी।

प्रजातंत्र

भारत में प्राचीन काल से प्रजातन्त्र स्थापित है। भारत प्राचीन काल से ही ग्राम गणराज्यों का देश रहा है जिसके अन्तर्गत अनेक स्वतन्त्र मूल्यों की स्थापना हुई है प्रजातन्त्र भी उन्हीं में से एक है। प्रजातन्त्र का अर्थ है नीचे से ऊपर की तरफ सत्ता का हस्तांतरण जे. सी. कुमारप्पा का कहना है कि विश्व के जितने भी बड़े प्रजातांत्रिक देश है, वहाँ वास्तव में पूर्ण तानाशाही व्यवस्था है। वास्तविकता यह है कि जब तक जनता का जनता के लिये जनता द्वारा शासन नहीं होगा और अपने दैनन्दिनी आवश्यकताओं की पूर्ति जनता द्वारा नहीं होती, प्रजातन्त्र स्थापित नहीं होगा। उनका कहना है कि सिंचाई सड़क सुरक्षा जैसे बड़े कार्य केन्द्र के पास होने चाहिए, किन्तु अन्य क्षेत्रों पर केन्द्र का नियन्त्रण कम-से-कम होना चाहिए। तभी वास्तविक प्रजातान्त्रिक व्यवस्था स्थापित हो सकती है और उसके बगैर आर्थिक सातत्यता की स्थापना नहीं हो सकती है।

कुछ ऐसे उद्योग जो राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित किये जाते है उनके कारण पूंजी कुछ व्यक्तियों के हाथ में केन्द्रित हो जाती है। जे.सी. कुमारप्पा का कहना है, कि यदि हमें पूंजी के सकेन्द्रण को रोकना है; तो इस प्रकार के उद्योगों के स्थापना से बचना चाहिये, क्योंकि ये जहर के समान है किन्तु कभी कभी जहर भी दवा के रूप में काम करती है ,जैसे-कुनैन। अतः यदि किसी उद्योग को राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित किया जाना हो तो इस प्रकार स्थापित किया जाना चाहिए कि वह जनता के लाभ के लिये हो उद्योगों की स्थापना जनता से लाभ करने मात्र के लिए न हो।

सरकार के काम

जे. सी. कुमारप्पा ने सरकार को कम–से–कम काम करने की सलाह दी है। उनके अनुसार सिंचाई, भूमि प्रबन्ध अनुसन्धान, सुरक्षा, पशुपालन, संचार एवं यातायात प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना आदि कार्य सरकार के द्वारा किए जाने चाहिए।

जीवन के लिये शिक्षा

शिक्षा का उद्देश्य व्यवसायिक न होकर जीवन के लिये शिक्षा की आवश्यकता होनी चाहिए। ऐसी शिक्षा जिसमें कि मूल्य एवं व्यवसाय दोनों पर बल दिया जाए प्रदान करने का सुझाव दिया गया, उनके अनुसार महिलाओं को शिक्षा अवश्य प्रदान की जानी चाहिए, क्योंकि वे आगे चलकर उसी के अनुसार बच्चों को प्रदान करती है। व्यवसायिकता के साथ–साथ कला को भी बच्चों की शिक्षा में सम्मिलित किया जाना चाहिए और अन्त में शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य आत्मनिर्भर एवं समग्र व्यक्तित्व का निर्माण करना होना चाहिए।

सामूहिक जीवन

अभी तक मनुष्य के व्यक्तिगत पक्षों को उजागर किया गया अब इसके बाद समूह के अंग के रूप में एक महत्वपूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिये मानव को क्या करना चाहिए इससे सम्बन्धित विचार करना चाहिए। इसके लिये निम्नांकित बिन्दुओं पर विशेष रूप से बल दिया जाना चाहिए।

1. व्यक्तिगत रूप से ऐसी आदतों को नहीं पालना चाहिए जिससे चारों तरफ गंदगी न फैले ।
2. सामूहिक रूप से सफाई के लिए प्रयास किये जाने चाहिए।
3. सबके स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए यह प्रयास किया जाना चाहिए कि सबको संतुलित भोजन पीने के लिये स्वच्छ पानी बीमारियों से बचने के लिए टीकाकरण, मनोरंजन के लिए मनोरंजन केन्द्र एवं व्यायामशाला का प्रयोग तथा सुन्दर एवं हवादार मकानों की व्यवस्था की जानी चाहिए।
4. गाँवों में निम्नांकित संगठनों का निर्माण किया जाना चाहिए।

अ. गाँवों को प्रशासन के लिये ग्राम पंचायत की स्थापना।
ब. बहुउद्देश्यीय सहकारी समितियों की स्थापना।
स. ग्राम सेवा संघों की स्थापना।

ग्रामीण संस्कृति की स्थापना

गाँवों में आत्मनिर्भरता एवं स्वायत्तता की स्थापना के लिए एक विकसित ग्रामीण संस्कृति की स्थापना आवश्यक है, इसके लिये निम्नांकित कार्य किये जाने चाहिए–

1. गाँवों के परम्परा और आदतों, संस्थाओं तथा इतिहास का अध्ययन।
2. लोक-गीतों, लोक कथाओं का संकलन।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि जे. सी. कुमारप्पा ने आर्थिक सातत्य की स्थापना के लिये यह आवश्यक माना है कि हम ऐसे कार्यों को करें जो प्रकृति एवं मानव के बीच एक तदात्मय स्थापित कर सके। जे. सी. कुमारप्पा महात्मा गांधी के न केवल शिष्य थे। अपितु उनके विचारों से अनुप्राजित थे यही कारण है कि उन्होंने प्रकृति के अधिक नजदीक रहने तथा आध्यात्मिक अहिंसक समाज की स्थापना पर बल दिया है। उनके विचारों की महत्ता का ऑकलन हम इसी बात से कर सकते हैं कि पाँच दशक से अधिक समय व्यतीत हो जाने के वावजूद उनके विचार न केवल प्रासांगिक हैं; अपितु आज समस्त विश्व उसी मार्ग का अनुसरण करने के लिए बाध्य है।

6

सातत्य आधारित आजीविका के अवसरों का सृजन

भारत एक तरफ अपने वैज्ञानिक एवं तकनीकी अनुसंधानों तथा संचार साधनों से सम्बन्धित नित नये आवष्किारों के चलते विश्व के उन प्रथम 15 देशों में से एक है जहाँ पर तकनीकी-औद्योगिक वृद्धि दर सर्वाधिक है। इसके बावजूद भारत विश्व के अंतिम 15 देशों में से भी एक है जहाँ पर प्रति व्यक्ति आय के साथ-साथ राष्ट्रीय आय में कमी पायी जाती है। इसका सबसे प्रमुख कारण प्रति व्यक्ति आय की दृष्टि से भारत में नगरों और ग्रामों के बीच में काफी अंतर होना है।

जीवनयापन करने के लिए व्यक्ति अनेकों तरह के रोजगार में संलग्न है। गतिशील एवं परिवर्तनशील समाज में रोजगार के प्रतिमान निरन्तर बदलते रहते हैं। पिछले 56 वर्षों में भारत में रोजगार के स्वरूप में काफी बदलाव आया है, अनेक रोजगार या तो कम हुए हैं या समाप्त हो रहें हैं। इसके साथ-ही-साथ रोजगार के नित नये आयाम विकसित होते जा रहे हैं। कम्प्यूटर एवं सूचना क्रांति के कारण संचार के साधनों एवं कार्य के स्वरूपों में आए परिवर्तनों ने भी रोजगार के स्वरूप को प्रभावित किया है। उदाहरण के लिए गाँव में पहले बढ़ई, लोहार, दर्जी, बुनकर, पटवा इत्यादि अनेक जातियाँ अपने परम्परागत व्यावसायिक कार्यों में संलग्न रह कर अपना जीविकोपार्जन करती थीं। इसी प्रकार गाँव में कारीगरों के अलावा भी कई ऐसे परिवार पाये जाते थे, जो अपनी सेवायें गाँव स्तर पर प्रदान करते थे; जैसे—पण्डित, नाई, धोबी, कहार, दाई, मेहतर, बाजा बजाने वाले एवं धानुक इत्यादि। ये अपने सेवाओं के माध्यम से अपना जीविकोपार्जन करते थे। उनके सेवा के बदले में अन्य लोग फसल आने पर अनाज, त्योहारों या शादी के अवसर पर पैसा, कपडे इत्यादि के माध्यम से उन्हें संतुष्ट करते थे।

दैनिक जीवन की उपयोग में नये उपकरणों, मशीनों, वाहनों आदि के आने से नये तरह के कारीगरों की संख्या कम हुई है और परम्परागत कारीगर एवं सेवा प्रदान करने वाला वर्ग धीरे-धीरे समाप्त हो रहा है। इसके साथ-ही-साथ सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन महिला एवं पुरुषों के रिश्ते, उनका स्थान, उनके द्वारा किये गये काम, घर और समाज में उनको मिलने वाला महत्व एवं सार्वजनिक जीवन तथा सार्वजनिक पदों पर सहभागिता के अवसर के रूप में हुआ है।

उपर्युक्त परिस्थितियों में अब यह आवश्यक हो गया कि ग्रामीण क्षेत्रों के लिए वर्तमान जनसंख्या वृद्धि दर को परिलक्षित करते हुए जीविकोपार्जन के साधनों की वृद्धि की जाय।

वर्ष 2002 में भारत की जनसख्या बढ़कर 1.02 अरब की सीमा को पार कर चुकी है। जनसंख्या वृद्धि के साथ-ही-साथ देश में आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधानों से निर्मित उपकरणों; जैसे--कम्प्यूटर इण्टरनेट, ई-मेल, ई-गर्वनेन्स, ई-कॉमर्स इत्यादि का भी उपयोग किया जा रहा है। इसका सबसे बड़ा दुष्प्रभाव रोजगार के अवसरों पर पड़ा है। जिसके कारण बेरोजगारी तीव्र गति से बढ़ती जा रही है। जहाँ तक शिक्षा प्राप्त करने वाले कुछ लोगों को ही रोजगार, की उपलब्धता सुलभ है, वहीं पर कम पढ़े–लिखे विशेषकर, ग्रामीण क्षेत्र की जनता के लिये रोजगार एक गम्भीर चुनौती बन चुका है। इसी परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए भारत के वर्तमान प्रधानमन्त्री ने घोषित किया है कि अगले दस वर्षों में दस करोड़ रोजगार सृजन करना है; इस प्रकार प्रति वर्ष एक करोड़ रोजगार जुटाने की चुनौती के समक्ष निरंतर रोजगार के साधनों की जटिल होने की समस्या के दोहरे प्रहार को झेलने के लिये देश मजबूर है। ऐसी परिस्थिति में एक व्यावहारिक मॉडल, जिसमें ग्राम स्वराज व्यवस्था के माध्यम से बड़े पैमाने पर रोजगार सृजन के साथ ही साथ सकारात्मक विकास कों गति मिलने की सम्भावना ग्रामीण रोजगार सृजन की दिशा में एक आशा की किरण के रूप में उभर कर आई है। इस अध्याय में मध्य प्रदेश के पन्ना जिला अन्तर्गत अपनायी गयी व्यवस्था को आशा के किरण के रूप में उसका विश्लेषण किया गया है।

पन्ना जिले की समस्याएँ

स्वतन्त्रता के 56 वर्ष व्यतीत होने के बावजूद पन्ना जिला के गाँव अपनी दुर्दशा पर आँसू बहा रहे हैं। अधिकांश गाँव अभी भी सुविधा विहीन है; जहाँ बरसात के दिनों में काफी गम्भीर स्थिति हो जाती है। जिले के 60 प्रतिशत लोग कृषि या उससे सम्बन्धि‍ात व्यवसायों पर आश्रित हैं, किन्तु एक व्यक्ति पर 7 लोग निर्भर है। ग्रामीण क्षेत्र का प्रमुख व्यवसाय कृषि होने के बावजूद मात्र इसमें 80 दिन के लिए रोजगार मिल पाता है। शेष दिनों में या तो बेरोजगार होते हैं या अर्द्ध-बेरोजगारी की स्थिति में जीवनयापन करते हैं। यद्यपि खेती के अलावा खनिज 12 प्रतिशत, वन 5 प्रतिशत से सम्बन्धित रोजगार उपलब्ध हैं। अन्य साधनों के अभाव एवं कृषि की कम उत्पादकता तथा अधिक लागत के कारण आर्थिक स्तर अत्यन्त ही निम्न है जो विचारणीय है।

जिलापन्ना के गाँवों में परम्परगत व्यवसाय या तो मृतप्रायः है या उनसे आंशिक रोजगार सृजित हो पाता है। आम जनता को योजनाओं की समुचित जानकारी न होने के कारण, छोटे एवं कुटीर उद्योगों के लिए कुशल मानव संसाधन न होने के कारण तथा

पर्याप्त बाजार की सुविधा उपलब्ध न होने के कारण द्वितीयक क्षेत्रों में आद्योगिक गतविधियों से सम्बन्धित गतिविधियों का पूर्णतः अभाव है। जनसंख्या में महिलाओं का आधा भाग होने के बाबजूद व्यवसायिक गतिविधियों में उनकी सहभागिता न के बराबर है। यही कारण है कि दिन-प्रतिदिन की आवश्यकता की वस्तुएँ भी जिले के बाहर से आती हैं जिससे जिले की पूँजी निर्माण की प्रकिया बाधित है।

समस्याओं के समाधान की दिशा में यद्यपि लम्बे समय से प्रयास किया गया किन्तु आम जनता में भागीदारी एवं जागरूकता का अभाव हैं। इसके कारण वांछित परिणाम प्राप्त नहीं हो सके। देश में विकेन्द्रीकृत नियोजन की व्यवस्था अपनायी गयी किन्तु इसके अन्तर्गत छोटी से छोटी बातों का समस्त निर्णय केन्द्र स्तर पर होने के कारण स्थितियाँ भी त्यों बनी रहीं या यों कहें कि मर्ज बढ़ता गया। आजादी के बाद हमारे देश के विकास का काम करने के लिए इसी केन्द्रीकृत नियोजन प्रणाली के द्वारा पंचवर्षीय योजनाएँ बननी प्रारम्भ हुईं। इसमें ऊपर के अधिकारी यह मानते थे कि आम जनता कुछ नहीं जानती अतः ऊपर बैठे लोग बंद कमरे में पूरे देश के लिए योजना बना देते थे, किन्तु इसके विपरीत प्रतिकिया होने लगी कि समस्या से उलझे लोग ही अपनी समस्या से छुटकारा पाने के लिए प्रयास करें।

धीरे-धीरे विकेन्द्रीकृत व्यवस्था के प्रति बुद्धिजीवियों का रूझान बढ़ा। ऐसी स्थिति में स्थानीय स्वशासन एक आशा की किरण के रूप में उभरकर आई तथा महात्मा गाँधी के सिद्धान्त प्रासांगिक लगने लगे। इस दिशा में प्रयास करने हेतु अनेक समितियों, जैसे बलवंत राय मेहता समिति (1956), अशोक मेहता समिति (1977) जी. वी. के. राव समिति (1985), लक्ष्मी मल सिंघवी समिति (1986), जी. के. थंगन समिति (1988), वी. एन. गाडगिल समिति (1989), इत्यादि का गंठन किया गया। इन समितियों के द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदनों के आधार पर राजीव गाँधी की सरकार ने पंचायती राज संस्थाओं को सकिय करने के लिए 62वाँ संविधान संशोधन विधेयक प्रस्तुत किया, किन्तु वह अधिनियम का रूप नहीं धारण कर सका किन्तु वह अधिनियम का रूप धारण नहीं कर सका। नरसिम्हा राव की सरकार ने 1993 में 73वाँ संविधान संशोधन विधेयक प्रस्तुत किया। जिसके स्वीकृत होते ही न केवल पंचायती राज संस्थाएँ संविधान का अभिन्न अंग बन गईं, अपितु अन्य कई महत्वपूर्ण परिवर्तन भी दृष्टिगत हुई जैसे पांच वर्ष में चुनाव की अनिवार्यता महिलाओं के लिए 33 % सीटों का आरक्षण, राज्य वित्त आयोग की स्थापना इत्यादि।

पंचायती राज के 29 विषय

73वें संविधान संशोधन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण परिवर्तन था। पंचायतों के लिए भी 29 विषयों का प्रावधान। जिस प्रकार केन्द्र व प्रान्तों को शक्तियों का वितरण संघ सूची

के विषय (97), राज्य सूची के विषय (61) तथा समवर्ती सूची के विषय (51) के द्वारा किया गया है, उसी प्रकार स्थायी ग्रामीण स्वशासन के लिए भी संविधान में 11वीं अनुसूची जोड़कर उसमें 29 विषयों का प्रावधान किया गया है। इन 29 विषयों को हम उनके प्रकृति के आधार में निम्नांकित 5 भागों में विभाजित कर सकते हैं–

- **सातत्य आधारित विषय**

1. कृषि और कृषि विस्तार।
2. कृषि विकास, भूमि सुधार, चकबंदी, भूमि संरक्षण।
3. सामुदायिक आस्तियों का अनुरक्षण।
4. लघु सिंचाई, जल प्रबन्ध और जल आच्छादन।

- **मानव संसाधन आधारित विषय**

1. शिक्षा माध्यमिक एवं प्राथमिक।
2. प्रौढ़ एवं अनौपचारिक शिक्षा।
3. तकनीकी शिक्षा एवं व्यावसायिक शिक्षा।
4. सांस्कृतिक कियाकलाप।
5. पुस्तकालय।

- **कल्याण आधारित विषय**

1. दुर्बल वर्ग विशेष कर अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति का कल्याण।
2. महिला एवं बाल विकास।
3. स्वास्थ्य, स्वच्छता, अस्पताल, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र और औषधालय।
4. परिवार कल्याण।
5. सार्वजनिक वितरण प्रणाली।
6. समाज कल्याण, विकलांग एवं मानसिक रूप से मंद व्यक्तियों का कल्याण।

- **अधोसंरचना आधारित विषय**

1. सड़क, पुलिया, फेरी, जल मार्ग तथा संचार के अन्य साधन।
2. गैर पारम्परिक ऊर्जा स्रोत।
3. ग्रामीण आवास।
4. ग्रामीण विद्युतीकरण एवं ग्रामों में विद्युत वितरण।
5. एफ. ई. धन एवं चारा।
6. बाजार एवं मेले।
7. पेयजल।

- **आजीविका आधारित विषय**

1. सामाजिक वानकी एवं फार्म वन उद्योग।
2. लघु उद्योग, खाद्य प्रसंस्करण सहित।
3. गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम।
4. मछली पालन।
5. कुक्कुट पालन, पशुपालन और दुग्ध उद्योग।
6. लघु वन उत्पाद।
7. खादी ग्रामीण एवं वन उद्योग।

इस प्रकार अब गाँव के विकास के लिए स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार उपरोक्त विषयों के अन्तर्गत योजना बनाने का दायित्व सौंप दिया गया है।

म. प्र. वह पहला राज्य है जिसने 73वें संविधान संशोधन अधिनियम की मूल भावना को और आगे बढ़ाते हुए गाँधीजी के सपनों को साकार करने के लिए एक नया कदम उठाया है। म. प्र. पंचायत राज एवं ग्राम स्वराज अधिनियम संशोधन अधिनियम 2001 लागू किया गया। इसके अन्तर्गत अब पंचायत राज प्रणाली की अनेक समस्याओं; जैसे–ग्राम-सभा का क्षेत्र बड़ा होना, ग्राम-सभा की बैठकें न होना, ग्राम सभा की बैठकों में कोरम न्यूनतम (उपस्थित संख्या) पूरा न होना, जनता की भागीदारी न होना, स्थगित बैठकों के लिए कोरम का प्रावधान न होना इत्यादि प्रमुख समस्याओं को दूर करने के लिए लाया गया। इस अधिनियम के अन्तर्गत अब निम्नांकित प्रावधान किए गए हैं–

1. सत्ता केवल नाममात्र की नहीं बल्कि सच्चे अर्थों में लोगों तक पहुँचने की व्यवस्था।

2. मध्य प्रदेश में चल रही इस लोकतांत्रिक व्यवस्था में समस्त जनता को भागीदार बनाने और लोगों को फैसले लेने के अधिकार देने की प्रक्रिया को प्रभावी बनाना।

3. औपचारिक पंचायत व्यवस्था और परंम्परागत पंचायत व्यवस्था में तालमेल का प्रयास करना।

4. इस माध्यम से राजनीति से लोकनीति की ओर प्रदेश सरकार का कदम बढ़ाना।

5. इसके द्वारा गाँव में प्रत्यक्ष लोकतन्त्र की स्थापना होगी और ग्राम गणराज्य की व्यवस्था में सत्ता सीधे-सीधे जनता के हाथ में आ जायेगी।

6. गाँव न सिर्फ राजनीतिक बल्कि सामाजिक आर्थिक इकाई के रूप में फिर से अपनी खोई प्रतिष्ठा प्राप्त करेंगे।

7. सत्ता और अधिकार के बजाय बातचीत, आम राय, सहमति और समझौते से समस्याओं के समाधान की दिशा में ग्राम समाज में नये दौर की शुरूआत होगी।

8. इसमें यह भी प्रावधान किया गया है कि ग्राम-सभा की स्थायी समितियों की बैठक ग्राम सभा की बैठक से पहले होना जरूरी है।

उपरोक्त व्यवस्था को लागू करने कि लिए पंचायतों को दिए गए समस्त अधिकार अब ग्राम सभा को प्रदान कर दिए गए हैं। ग्राम-सभा अपने इस गुरोत्तर दायित्व का बहन आठ स्थायी समितियों तथा कार्य की आकस्मिकता के अनुसार अस्थायी समितियों के माध्यम से करती है, जिसका विवरण निम्न है –

स्थायी समितियाँ

1. **ग्राम विकास समिति**–जिसमें योजना बनाने, राजस्व, कराधार, लेखा, बजट, ग्राम कोष एवं अन्य वित्तीय मामलों पर विचार–विमर्श होगा तथा निर्णय लिये जायेंगे।

2. **सार्वजनिक संपदा समिति**–जिसके अंतर्गत भूमि, वन, जल संसाधन, खनिज साधन और पर्यावरण आदि विषय आयेंगे।

3. **कृषि समिति**–जिसके अंतर्गत कृषि, पशुपालन, मत्स्य पालन, भूमि संरक्षण, सहकारिता, जल संवर्धन, सिंचाई और प्राकृतिक आपदा, राहत जैसे विषय आयेंगे।

4. **स्वास्थ्य समिति**–जिसमें स्वास्थ्य, पेयजल, परिवार कल्याण, स्वच्छता आदि विषय आयेंगे।

5. **शिक्षा समिति**–जिसमें प्राथमिक शिक्षा, खेलकूद, पढ़ता–बढ़ता आदि विषय आयेंगे।

6. **अधो-संरचना समिति**–जिसमें ग्रामीण विकास, संचार, ग्रामोद्योग, ग्रामीण आवास, लोक निर्माण अल्प बचत और उर्जा आदि विषय आयेंगे।

7. **सामाजिक न्याय समिति**–जिसमें समाज कल्याण, विकलांग कल्याण, निराश्रित, **महिला और बाल विकास समिति अनुसूचित जाति**–जनजाति विकास, सामाजिक सुरक्षा और मजदूरों की हित रक्षा आदि विषय आयेंगे।

8. **ग्राम रक्षा समिति**–जिसमें युवा कल्याण और गाँव की रक्षा आदि विषय आयेंगे।

ग्राम स्वराज व्यवस्था की मूल भावना यह है कि गाँव में गाँव वालों का राज हो जिससे वास्तविक प्रजातन्त्र की स्थापना हो सके तथा गाँव आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर एवं मजबूत बन सकें। इसके लिए ग्राम स्तर पर चार प्रकार के ग्राम कोष बनाने का प्रावधान है यथा–

1. अन्न कोष।
2. वस्तु कोष।
3. श्रम कोष।
4. नकद कोष।

ग्राम स्वराज व्यवस्था में अब बजट एवं योजना बनाने का दायित्व गाँव वालों को सौंपा गया है। इस प्रकार अब गाँव के सभी काम ग्राम सभा को करना है, तथा ग्राम विकास समिति को गाँव की योजना बनानी है। इसके अन्तर्गत सबसे प्रमुख बात यह है कि गाँव को आत्मनिर्भर बनाने के लिए सबसे आवश्यक कदम उठाने का दायित्व गाँव वालों को सौंपा गया है। गाँव में अधिक से अधिक रोजगार सृजन कैसे हो इसके लिए प्रयास किए जाए साथ ही समस्त संसाधनों—मानव से संसाधन प्राकृतिक संसाधन, भूगर्भिक संसाधन, वित्तीय एवं संसाधनों का समुचित एवं आवश्यकतानुसार उपयोग हो सके।

मध्य प्रदेश ने 26 जनवरी 2001 को तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री दिग्विजय सिंह की पहल पर ग्राम स्वराज की व्यवस्था लागू कर राजनीति से लोकनीति की ओर पहला कदम बढ़ाया है। इसके द्वारा पंचायत राज की व्यावहारिक विसंगतियों को दूर करके ग्राम स्तरीय समस्याओं के निराकरण का अवसर गांव वालों को प्रदान किया गया। ग्राम स्वराज अधिनियम के द्वारा आम जनता को बहुत सारे अधिकार प्रदान किये गये हैं। विंसगति यह रही कि इन अधिकारों एवं प्रावधानों की जानकारी आम जनता तक नहीं पहुँच पाई।

ग्राम स्वराज की पहली वर्षगांठ के अवसर पर जिला वर्तमान कलेक्टर की पहल एवं प्रयास द्वारा ग्राम स्वराज व्यवस्था को सशक्त बनाने तथा उसमें आम जनता की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए ग्राम स्वराज संस्थान की स्थापना की गयी। चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय के विशेषज्ञों, प्राध्यापकों एवं प्रशासन के मिले जुले प्रयास द्वारा ग्राम स्वराज व्यवस्था को गाँव-गाँव में मजबूत बनाने हेतु प्रशिक्षणों एवं सम्मेलनों के विशेष आयोजन किये गये।

इस दिशा में सबसे अधिक मजबूत प्रयास करते हुए कलेक्टर पन्ना के द्वारा अधिनियम की धारा 07 "ठ" के परिपालन में एक आदेश निर्गत करके ग्राम स्तरीय शासकीय कर्मचारियों पर ग्राम-सभा की समितियों का नियंत्रण स्थापित कर दिया गया।

पन्ना जिले में ग्रामस्वराज के लिए उठाया गया कदम सफलता की ओर बढ़ रहा है। जिला के प्रत्येक गाँव में ग्राम स्वराज की चर्चा होने लगी हैं तथा शासन पर निर्भरता कम हुई है। रोजगार के नये अवसर सृजित हुए हैं। यहाँ लोगों के अन्दर सामाजिक जागरुकता एवं जीवन के आर्थिक स्तर को सुधारने के प्रयास जहाँ जारी हैं , वहीं पर अपने अधिकारों को लेकर लोगों के तेवर बदलने लगे हैं।

गाँधीजी चाहते थे कि जनता के अधिकार गाँव से जनपद, जनपद से जिला, जिला से प्रदेश के रास्ते केन्द्र तक पहुँचें। गाँव में क्या हो ? कैसे हो ? कौन करे ? यह तय करने का अधिकार गाँव को मिले। जिस प्रकार परिवार में परिवार के सभी सदस्य साथ मिल बैठ करके यह तय करते हैं कि कौन क्या काम करेगा ? कब करेगा ? तथा उन कार्यों में कौन—कौन सहयोग देगा ? ग्राम स्वराज व्यवस्था में भी ठीक उसी प्रकार ग्राम-सभा के सभी सदस्य ग्राम-सभा की बैठक में मिल-जुलकर, विचार-विमर्श, भाई-चारे

और आपसी सहमति से गाँव के विकास सम्बन्धी बातें तय करेंगे। ग्राम स्वराज व्यवस्था में सत्ता और अधिकार गाँव के सभी जनता में समाहित हैं जो कि प्रतिनिधि प्रजातन्त्र से प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र की ओर महत्वपूर्ण यात्रा है।

ग्राम स्वराज में दूसरी सबसे महत्वपूर्ण बात आत्मनिर्भरता की है और गाँव की आत्मनिर्भरता में गाँव के अमीर, गरीब, किसान, मजदूर, सभी अन्न कोष, श्रम कोष, वस्तु कोष और नकद कोष के रूप में अपने योगदान दे सकते हैं। वे अपने बलबूते गाँव को आत्मनिर्भर, मजबूत एवं स्वाभिमानी बना सकते हैं। इससे प्राचीन गाँवों के गौरव याचक नहीं दाता की भूमिका को पुनः स्थापित कर सकते हैं।

ग्राम स्वराज की एक अन्य महत्वपूर्ण बात ये है कि गाँव में अन्याय, छुआछूत, दहेज प्रथा तथा अन्य कुप्रथाओं को दूर करने के साथ-ही-साथ अनुसूचित जाति, आदिवासी, पिछड़ा वर्ग, निराश्रित एवं विकलांगों, महिला एवं बाल कल्याण से जुड़े बिषयों पर ग्राम-सभा को काम करने की विशेष आवश्यकता है। इसके लिए सभी का दायित्व है कि ग्राम-सभा की बैठकों में वंचित वर्गों जैसे–महिलाओं, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और दलित, पिछड़े वर्ग के लोगों की अधिक-से-अधिक सहभागिता हो जिससे वे अपनी भलाई के लिए स्वयं निर्णय लें तथा निर्णयों के क्रियान्वयन में भागीदार बनें।

बात यह आती है कि इन सब कामों को हर समय कौन देखें ? इसके लिए ग्रामसभा में स्थाई समितियों की व्यवस्था है। ये समितियाँ ग्राम-सभा के प्रतिनिधि के रूप में काम करती हैं। इस हेतु इन समितियों की कियाशीलता आवश्यक है।

पन्ना जिले को प्रादर्श बनाकर यहाँ पर प्रदेश की वर्तमान आवश्यकता, अधिकतम ग्रामीण रोजगार सृजन के लिए शिक्षा का उपयोग करते हुए ग्राम स्वराज के लक्ष्यों को कैसे प्राप्त किया जा सकता है, के संबंध में अध्ययन किया गया है इसके लिए पन्ना जिले को अध्ययन क्षेत्र के रूप में चयनित किया गया है, क्योंकि इस जिले में इस दिशा में एक महत्वपूर्ण पहल जारी है। अध्ययन के अन्तर्गत पी. आर. ए. (सहभागी ग्रामीण समीक्षा) अध्ययन पद्धति के ब्रेन स्टार्मिंग एवं फोकस ग्रुप डिसकशन तकनीकों के साथ ही साथ जिले स्तर पर प्राप्त द्वितीयक तथ्यों एवं भौगोलिक सूचना पद्धति एवं दूर संवेदी प्रविधियों से प्राप्त तथ्यों का प्रयोग करके उचित निष्कर्ष प्राप्त करने का प्रयास किया गया है। इस अध्ययन के लिए प्राथमिक तथ्यों के संकलन हेतु जिले पर एक कार्यशाला के आयोजन के अलावा पन्ना जिला के समस्त विकास खण्डों को संसाधन ग्रहण क्षेत्र (Resource sheds) के आधार पर–11 भागों में विभक्त किया गया साथ ही बाजार की दृष्टि से प्रत्येक रिसोर्स शेड में एक विकसित बाजार जो ग्रामीण विकास नेटवर्किंग केन्द्र के रूप में अन्य ग्रामों को जोड़ सके, चयनित किया गया है।

क्र.सं	संसाधन क्षेत्र का नाम	विकास खंड	आधार
1.	सेमरिया	पवई	कृषि
2.	पवई	पवई	खनिज कृषि

3.	कल्दा	पवई	वनोपज, पत्थर
4.	अमानगंज	गुनौर	कृषि
5.	गुनौर	गुनौर	कृषि
6.	अजयगढ़	अजयगढ़	जंगल
7.	धर्मपुर	अजयगढ	कृषि
8.	देवेन्द्रनगर	पन्ना	कृषि
9.	पन्ना	पन्ना	खनिज कृषि
10.	रैपुरा	शाहनगर	पठारी, वनोपज
11.	शाहनगर	शाहनगर	खनिज कृषि

रोजगार संपन्नता के लिए निर्मित उपर्युक्त संसाधन ग्रहण क्षेत्रों को प्रशासन द्वारा निर्मित संरचना के निम्नानुसार स्थापित करने पर विचार प्रस्तावित किया गया है।

जिला स्तर	→	केन्द्रीय नियोजन इकाई
विकास खण्ड स्तर	→	ग्रामीण विकास केन्द्र
प्रस्तावित संरचना	→	संसाधन ग्रहण केन्द्र
पंचायत संकुल स्तर	→	तकनीक हस्तान्तरण केन्द्र
पंचायत स्तर	→	एक पंचायत एक उत्पाद इकाइयाँ

सतत् ग्राम स्वराज की दिशा में ग्रामीण रोजगार सृजन हेतु जिला स्तरीय कार्यशाला

जिला मुख्यालय पन्ना में दिनांक 07 सितम्बर 2002 को "ग्राम स्वराज के लिए शिक्षा के माध्यम से ग्रामीण रोजगार की उपलब्धता" –पन्ना जिले के संदर्भ में" विषय पर एक कार्यशाला का आयोजन किया गया, जिसमें पन्ना जिले में ग्रामीण विकास के सम्भावनाओं को तलाशने के लिए आवश्यक तत्वों का संकलन किया गया। इस कार्यशाला में जिला प्रशासन के विभागों के ऐसे अधिकारी एवं कर्मचारी जो ग्राम स्वराज के 29 विषयों से सम्बन्धित थे की सहभागिता के अलावा इस दिशा में कार्यरत स्वयंसेवी संस्थाओं के सदस्यों, व्यवसायिक तथा अन्य शिक्षण संस्थाओं के शिक्षकों की भी सहभागिता प्राप्त हुई। कार्यक्रम का प्रमुख लक्ष्य मध्य प्रदेश के स्तर पर ग्रामीण क्षेत्र में अवसरों की वृद्धि के लिए शिक्षण के नये आयाम विकसित करने तथा पुराने प्रयासों को और प्रभावी बनाने के लिए पन्ना जिले के आधार पर एक दृष्टि तैयार करना था।

कार्यशाला में सर्वप्रथम राधाकृष्णन समिति (1949) द्वारा प्रस्तुत ग्रामीण रोजगार के लिए उचित शिक्षा प्रणाली से सम्बन्धित निम्नांकित 14 क्षेत्रों को रेखांकित किया गया है–

1. Vement Engg.
3. Temperature Control Engg.
4. Food Processing Technology
5. Chemurgic Engg.
6. Ocean Products Techmology
7. Mineral Processing
9. Rural Social Welfare
10. Rural Land and Village Planning
11. Profession of Social Engg.
12. Rural Sociology
13. Rural Arts
14. Rural Medical Service.

पन्ना जिले में रोजगार उपलब्ध कराने की दिशा में किए जा रहे प्रयासों तथा उसमें आ रही समस्याओं का विस्तार से वर्णन किया गया है। कार्यशाला उपस्थिति प्रतिभागियों से पन्ना जिले में और किन-किन दिशाओं में शिक्षण प्रशिक्षण प्रदान किया जाए इस पर अभिमत प्राप्त किए गए प्राप्त अभिमतों पर गम्भीर विचार विमर्श के उपरान्त पन्ना जिले के लिए 12 क्षेत्र उभर के सामने आए। इन क्षेत्रों में नए पाठ्यक्रम एवं प्रशिक्षण की सुविधा सहभागियों द्वारा आवश्यक बताई गई। क्षेत्र निम्नवत् है–

1. Water & Soil
2. Food Processing
3. Mineral Processing
4. Rural Arts & Handicrafts
5. Rural Industrial Counseling
6. Agro Services
7. Herbal Aromatic
8. Dary & Animal Husbandry
9. Repair Service
10. Business Finance
11. N.G.O. Sector
12. Food Packaging.

इसके पश्चात् पूरे जिले में ऐसे कौन–कौन से संसाधन हैं जिस पर आधारित व्यवसायिक या औद्योगिक गतिविधियाँ संचालित की जा सकती है, यह जानने का प्रयास किया गया। उत्तर दाताओं से प्राप्त विचार पर गहन विचार–विमर्श के उपरान्त निम्नांकित गतिविधियाँ चिह्नित की गई–

1. Making Diamond Mine Waste into Building Block
2. Private Energy Center based on Gasifier

3. Cultural Tourism
4. Tractor Repair Unit
5. Submarsible Pump Repair Unit
6. Tier Remoting Plant

1. पत्थर के टायल व खिलौने (Tails and Toy of Stone etc.)
2. डेयरी उद्योग (Dairy Indestris)
3. टाट--पट्टी
4. लकड़ी के खिलौने
5. ऑवला के उत्पाद
6. औषधिक पौधे (Medicinal Plant)
7. काली मिट्टी का फेसियल, दूध की मलाई व नीम के बीज पर आधारित उद्योग
8. खाद्य प्रसंस्करण
9. नीम अगरबत्ती
10. बीज तैयार करने का उद्योग
11. प्रसंस्करण उद्योग

स्वास्थ्य सेवाऐं (Health Services)

1. पशुपालन
2. उन्नत कृषि
3. उपकरण मरम्मत
4. वनोत्यार प्रसंस्करण
5. जिला स्तरीय खनिज प्रक्रिया (Mineral Processing at District Level)
6. वर्मीकल्चर (Vermiculture)
7. कटिंग पॉलिशर (Cutting Polishing)
8. शीतलन प्लाण्ट (Chiling plant)
9. जड़ी-बूटी उत्पादन
10. अपशिष्ट उपयोगी उद्योग (Waste Utilasation Industry)
11. चने पर आधारित उद्योग
12. अनाज का वर्गीकरण
13. जैविक खाद का उत्पादन, प्रयोग एवं व्यापार
14. औषधीय पौधों की खेती
15. जंगली उत्पाद का संग्रहण
16. जैविक खेती

17. हस्तशिल्प
18. शीतल पेय एवं पानी बन्दी (Soft Drinking and Packed Water)
19. जी. आई. एस. (G.I.S.)
20. कम्प्यूटर साक्षरता (Computer Literacy)
21. Brick work
22. दोना-पत्तल
23. चाक, मोमबत्ती
24. सफेद मूसली प्लाण्ट
25. रेत का उद्योग
26. लकड़ी से संबंधित
27. बाँस उद्योग
28. ग्राम नीति निर्देशिका (Directory of Rural Schemes)
29. वाशिंग पाउडर (Washing Powder)
30. शहद उद्योग Honey Bee Keeping
31. बीड़ी उद्योग

उपर्युक्त जानकारी प्राप्त करने के पश्चात् विकासखण्ड में उपलब्ध संसाधनों के आधार पर वर्तमान समय में कौन-कौन से परम्परागत व्यवसाय चल रहे हैं। यह जानने का प्रयास किया गया जिससे कि यह आंकलन किया जा सके कि उनमें से किन-किन को अभी भी प्रोत्साहित किया जा सकता है। माँगे गये सुझावों के आधार पर जो निष्कर्ष उभर कर सामने आए उनका संक्षिप्त विवरण निम्नांकित सारिणी में प्रदान किया जा रहा है–

सारणी

क्र.स.	विकासखण्ड का नाम	परम्परागत व्यवसाय
1.	अजयगढ	खोआ, रस्सी, गुड्ड, शहद, पर्यटन
2.	गुनौर	सिंघाडा चूर्ण, मूर्तिकला, लोहे के ताले, जड़ी बूटियां, पान,
3.	पन्ना	पत्थर का सामान, मूर्ति, फर्नीचर, हीरा खदान, आंवला अचार
4.	पवई	पत्थर की खदान, आंवला, शिलाजीत पत्थर, खस, जड़ी बूटिया
5.	शाहनगर	मंहुआ, अचार, शहद, पत्थर की खदानें

स्वरोजगार सम्पन्न ग्राम स्वराज हेतु सम्मेलन

पन्ना जिले में ग्राम स्वराज को स्थायित्व प्रदान करने के लिए यहाँ के आम आदमी की रोजी-रोटी सुनिश्चित करना एक बड़ी चुनौती है। महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय के विशेषज्ञ, प्राध्यापकों द्वारा जिले में संचालित ग्राम स्वराज संस्थान ने जिला प्रशासन के सहयोग से इस चुनौती को स्वीकार कर इसका समाधान करने का बीड़ा उठाया है। जिला प्रशासन एवं विश्व-विद्यालय मिलकर ग्रामीण रोजगार सृजन के लिए एक अनूठी पहल कर रोजगार का जिला स्तरीय एक ऐसा मॉडल तैयार कर रहा है, जो पूरे प्रदेश के लिए एक उदाहरण सिद्ध होगा। इससे समस्त जिलों में ग्राम स्वराज के माध्यम से गाँव के लोगों को स्वावलम्बी बनाकर स्वाभिमान के साथ उनके अन्दर आत्म-विश्वास पैदा किया जा सकेगा।

विश्व-विद्यालय पूरे प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों से ग्रामीण रोजगार की वास्तविक जानकारी प्राप्त कर उस अनुभव के आधार पर ग्राम स्वराज संस्थान के माध्यम से पन्ना जिले में रोजगार सृजन की विशेष पहल कर रहा है। इस रोजगार सृजन में विश्व-विद्यालय के विशेषज्ञ वैज्ञानिक, भौगोलिक सूचना पद्धति एवं सुदूर संवेदन (GIS) द्वारा नियोजन में सहयोग कर रहे हैं। विश्व-विद्यालय द्वारा आयोजित उपर्युक्त कार्यशाला के द्वारा प्राप्त जानकारी की पूरे जिले में क्षेत्रीय स्तर पर जाँच करने एवं ग्राम स्वरोजगार की स्थाई समितियों के जिम्मेदार सदस्यों के द्वारा उनके क्षेत्रीय संसाधनों के आधार पर रोजगार सृजन की संभावनाओं तथा जिला प्रशासन द्वारा सुझाये गये रोजगारों के सन्दर्भ में उनकी प्रतिक्रिया एवं सुझावों को प्राप्त करने के लिए ग्राम स्वराज सम्मेलनों का आयोजन सुनिश्चित किया गया। इन ग्राम स्वराज सम्मेलनों के आयोजन हेतु समस्त पन्ना जिले को उसकी भौगोलिक स्थिति तथा संसाधन के आधार पर 11 संसाधन संग्रहण क्षेत्रों में विभक्त किया गया। प्रत्येक संसाधन संग्रहण क्षेत्र में एक ग्राम स्वराज सम्मेलन करने की योजना बनाई गयी। इसका उद्देश्य ग्राम सभा की स्थायी समितियों के सदस्यों को उनकी भूमिका तथा गाँवों में उनकी महत्वपूर्ण जिम्मेदारी से अवगत कराने तथा ग्राम स्वराज अधिनियम के अन्तर्गत प्रावधान किये गये उनके कर्तव्य एवं अधिकारों की जानकारी प्रदान करने के साथ-साथ उन्हें आर्थिक रूप से अपने गाँव को मजबूत करने के लिए रोजगार सम्बन्धी जानकारी देकर इसके लिए दिये गए उनके सुझावों को प्राथमिकता के आधार पर एकत्रित किया गया। सम्मेलन में जिले स्तर के विभिन्न विभागों के अधिकारियों ने सहभागिता की तथा समिति के सदस्यों की उनके गाँव में विभाग से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं एवं उनके समाधान के प्रति विस्तृत चर्चा की। ग्राम स्वराज के अन्दर गाँवों में चल रही विभागों की विभिन्न योजनाओं तथा गाँव वालों को उससे मिलने वाले लाभों की भी जानकारी दी गयी।

पन्ना जिला में ग्राम स्वराज सम्मेलनों के माध्यम से ग्राम स्वराज को सशक्त करने तथा उसे रोजगार सम्पन्न (Livelihood Rich) बनाने हेतु किये गये प्रयासों के उत्साह-जनक परिणाम देखने को मिले। सम्मेलनों में लोगों ने भारी संख्या में भागीदारी की, तथा जिला प्रशासन द्वारा सुझाये गये रोजगारों को स्वीकार कर अपनी सहमति प्रदान की। इन सम्मेलनों में रोजगार सम्बन्धी सूक्ष्म विवरण निम्न है--

सारणी

क्रम. सं	स्थान	दिनांक	प्रतिभागियों की संख्या	जिला प्रशासन द्वारा चयनित रोजगार	क्षेत्रीय आधार पर सहभागियों द्वारा सुझाये गये रोजगार
1.	सिमरिया	11-09-02	670	मधुमक्खी, पालन अगरबत्ती निर्माण, मुर्गीपालन	फूलों की खेती
2.	पवई	12-09-02	780	मधुमक्खी पालन, अगरबत्ती निर्माण	अगरबत्ती की कांड़ी का निर्माण, औषधीय खेती, लघु वनोपज संग्रहण
3.	अमानगंज	13-09-02	702	मुर्गी पालन, डेयरी	अगरबत्ती की कांड़ी का निर्माण, औषधीय खेती, फूलों की खेती
4.	गुनौर	15-09-02	1612	डेयरी, मुर्गी पालन, मधुमक्खी पालन	पान उद्योग
5.	कल्दा	18-09-02	370	धुमक्खी पालन, अगरबत्ती निर्माण	अगरबत्ती की कांड़ी का निर्माण, लघु वनोपज संग्रहण
6.	अजयगढ़	19-09-02	779	मधुमक्खी पालन, मुर्गी पालन,	फूलों की खेती, फल एवं सब्जी का उत्पादन
7.	देवेन्द्रनगर	20-09-02	1318	मधुमक्खी पालन, मुर्गी पालन	फूलों की खेती, औषधीय खेती
8.	पन्ना	22-09-02	1801	मधुमक्खी पालन, मुर्गी पालन, डेयरी	अगरबत्ती की कांड़ी का निर्माण, मधुमक्खी पालन के डिब्बों का निर्माण,
9.	रैपुरा	25-09-02	1280	मधुमक्खी पालन, मधुमक्खी पालन के डिब्बों का निर्माण	अगरबत्ती की कांड़ी का निर्माण, फल सब्जी उत्पादन
10.	धरमपुर	27-09-02	572	मुर्गी पालन, डेयरी, अगरबत्ती निर्माण	फूलों की खेती, मधुमक्खी पालन के डिब्बों का निर्माण
11.	शाहनगर	28-09-02	914	अगरबत्ती निर्माण, डेयरी, मधुमक्खी पालन	लघु वनोपज संग्रहण, फूलों की खेती, फल-सब्जी उत्पादन, औषधीय खेती

पन्ना के ग्रामीण क्षेत्र के लिए रोजगार सृजन प्रादर्श

एक पंचायत एक उत्पाद

पन्ना जिले में पूँजी के प्रवाह और बाजार उपलब्धता का समुचित अवसर होने के कारण जिले में गठित स्वसहायता समूह अपने अनुसार गतिविधियों का चयन कर लिए थे। इसके कारण नियोजित ढंग से गाँवों के सशक्तीकरण के कार्यक्रम संचालित करने

में कठिनाइयाँ आ रही थी। जिले स्तर पर इस समस्या के समाधान के लिए व्यापक विचार विमर्श के पश्चात जिला प्रशासन ने एक पंचायत एक उत्पाद योजना को समाधान के रूप में क्रियान्वित करने पर विचार किया।

एक पंचायत : एक उत्पाद आंदोलन का लक्ष्य

ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सृजन एवं प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि के लिए शासन द्वारा अनेक कार्यक्रम बनाए गये, किन्तु ये सभी कार्यक्रम हितग्राही मूलक होने के कारण सम्बन्धित लाभान्वित व्यक्ति आत्मनिर्भर होने के बजाय सरकार पर निर्भर हो गये। छोटी-छोटी बातों के लिए भी, जिनके लिए वे कभी स्वयं सक्षम हुआ करते थे, वे दूसरों का मुँह देखने लगे। प्रायः जिस कार्य के लिए सहायता प्रदान की जाती थी उसके स्थान पर अन्य गैर उत्पादक क्षेत्रों में खर्च होने के कारण ये योजनाएँ अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में असफल रहीं। इस कमी को दूर करने के लिए अब शासकीय एवं गैर शासकीय क्षेत्रों के माध्यम से हुए प्रोत्साहन के फलस्वरूप स्व–सहायता समूह अर्थात् ऐसे लोगों का समूह जो अपनी सहायता कर सकें के माध्यम से विकास करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया। स्वसहायता समूह के सदस्य स्वरोजगारी अर्थात स्वयं अपना रोजगार स्थापित करके अपने प्रयासों से गरीबी उन्मूलन की मंजिल तय करते हैं।

वर्तमान प्रयोग के अन्तर्गत प्रत्येक गाँव में स्थित स्वयं-सहायता समूह के माध्यम से पंचायत स्तर पर सामूहिक व्यवसाय चयन करके बाजार इत्यादि के उपयोगिता के आधार पर गतिविधियों का संचालन किया जाता है। इसके लिए पन्ना जिला में एक पंचायत के अन्तर्गत आने वाले सभी स्वयं सहायता समूहों को एक उत्पाद उत्पादित करने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है। एक पंचायत, एक उत्पाद का यह आंदोलन व्यक्ति से व्यक्ति, गाँव से शहर, विभागों से विभागों के मध्य सम्वादों के माध्यम से प्रसारित हो रहा है। इस सिद्धान्त की पहुँच धीर-धीरे जिले के बाहर और मध्य प्रदेश के स्तर पर भी हो रही है।

आन्दोलन के सिद्धान्त

यह आन्दोलन निम्नांकित तीन प्रमुख सिद्धान्तो पर आधारित है–

1. **"थिंक ग्लोवली एक्ट लोकली"** के सिद्धान्त के अनुसार लोग अपने उत्पाद स्थानीय सोच के अनुरूप निर्मित करेंगे जिसे पूरे प्रदेश अथवा देश के शेष भागों में भी कीमती उत्पादों के रूप में भेजा जायेगा और साथ ही पर्यावरण संरक्षण का भी ध्यान रखा जायेगा।

2. **स्वत्रन्तता एवं सृजनात्मकता**–इसके अन्तर्गत जिले के 379 पंचायत अपने-अपने क्षेत्र के अन्तर्गत कौन से उत्पाद उत्पादित करेंगी, का निर्णय स्वत्रन्त रूप

से करती है। एक पंचायत अधिकतम तीन उत्पादों का चयन स्वेच्छा से करती है साथ ही दो या दो से अधिक पंचायत साथ मिलकर भी किसी एक उत्पाद का निर्माण कर सकती हैं। जिला प्रशासन इन्हें तकनीकी क्षमता वृद्धि एवं बाजार उपलब्धता के क्षेत्र में सहायता प्रदान करता है।

3. **मानव संसाधन विकास**—इस आन्दोलन का अन्तिम लक्ष्य मानव संसाधन का विकास करना है। इसके लिए ऐसे स्थानीय समुदायों को विकसित करना है जो कठिन समय में आई चुनौतियों का सामना सक्षमतापूर्वक कर सकें। साथ ही प्रत्येक पंचायत में चयनित उद्योग में संलग्न व्यक्तियों के ज्ञान और क्षमता वृद्धि करने के साथ ही उनकी मनोवृत्ति में इस प्रकार परिवर्तन करने का प्रयास किया जा रहा है, जिससे वे सम्बन्धित चिन्तन के अनुरूप प्रति व्यक्ति आय एवं राष्ट्रीय आय में वृद्धि करने सम्बन्धी दिशा में कार्य करने लगें।

जिला प्रशासन की भूमिका

जिला प्रशासन पंचायतों द्वारा किये गये प्रयासों को आगे बढ़ाने के लिए सहयोग प्रदान करने के बावजूद उनके स्वायत्तता को बनाये रखने के लिए उनकी निर्णय प्रक्रिया में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करेगा और न ही किसी भी प्रकार का आदेश–निर्देश या छूट इत्यादि प्रदान करेगा। प्रशासन तकनीकी परामर्श प्रदान करने के अलावा ऐसे स्वयं–सहायता समूहों को भी सहयोग प्रदान करेगा जो इस आंदोलन को बढ़ावा देने के लिए बगैर किसी शासकीय स्कीम के कार्य कर रहे हैं।

आन्दोलन के सशक्तीकरण एवं पूँजी निर्माण के लिए रणनीति

आदोलन के लिए सर्वाधिक सकारात्मक पहलू यह है कि प्रत्येक पंचायत के लोग अपने हिसाब से उत्पादों के निर्माण, की गतिविधि में सम्मिलित होकर परियोजनाओं की चुनौतियों का सामना करने के लिए काफी उत्साहित है। लोग निरन्तर इस दिशा में चिंतन कर रहें कि अपने भविष्य को बेहतर कैसे बनाया जा सके। सम्भव है अनुभव न रहने के कारण यह प्रयास कुछ स्थानों पर असफल हो सकता है, किन्तु उनका उत्साह, आत्मविश्वास एवं सफलताओं से प्राप्त प्रोत्साहन इस आंदोलन के विकास के अगले चरण में उन्हें ले जाने के लिए मार्ग प्रशस्त करेगा।

तकनीक वितरण संरचना

तकनीक ही वह माध्यम है जिससे असमानता और विषमता को दूर कर बड़े पैमाने पर रोजगार सृजन किया जा सकता है। अतः बेरोजगारी और गरीबी दूर करने में भी इसका उपयोग किया जा रहा है। नये तकनीक का उपयोग और तकनीकी ज्ञान का प्रसार

एवं प्रचार जितना ही तीव्र होता है, उसी अनुपात में किसी भी समुदाय की प्रगति सम्भव होती है। तकनीक का उपयोग किसी भी समुदाय के द्वारा तभी हो सकता है जब उसका उस समुदाय को ज्ञान हो, और समुदाय के सदस्यों के तकनीकी कौशल का उन्नयन हो तथा उस तकनीक को अपनाने के प्रति लोगों की मनोवृति में सकारात्मक परिवर्तन भी आयें।

उपरोक्त कार्य के लिए तकनीकी वितरण प्रणाली विकसित करने के लिए जिला प्रशासन के द्वारा तीन स्तर पर नेटवर्क तैयार करने का निर्णय लिया गया है–

1. **पंचायत संकुल स्तर**–तकनीक हस्तान्तरण केन्द्र पूरे पन्ना जिले में 120 पंचायत स्तर के गाँव को इसके लिए चयनित किया गया है। ये तकनीक हस्तांतरण केन्द्र स्वयं सहायता समूह को दिन प्रतिदिन के कार्यो में आने वाली कठिनाईयों का निराकरण एवं स्वयं सहायता समूहो के सदस्यों को प्रशिक्षण प्रदान करने का कार्य करेंगे। इसके साथ ही साथ ये संकुल स्तरीय पंचायत केन्द्र कच्चे माल की आपूर्ति एवं निर्मित माल को विकास खण्ड स्तर पर बनाये गये ग्रामीण विकास केन्द्रों तक पहुँचायेंगे।

2. **ब्लाक स्तर**–ग्रामीण विकास केन्द्र: पन्ना जिले में कुल 5 सामुदायिक विकास खण्ड हैं, जिन्हें ग्रामीण विकास केन्द्र के रूप में विकसित किया जा रहा है। यही से स्वयं सहायता समूहों के सदस्यों को उच्च स्तरीय तकनीकी ज्ञान प्रदान करके उन्हें प्रबंधक के रूप में कार्य करने के लिए आवश्यक प्रशिक्षण प्रदान किया जायेगा।

3. **जिला स्तर**–केन्द्रीय नियोजन इकाई : जिला पंचायत के द्वारा जिले स्तर पर एक केन्द्रीय नियोजन इकाई को गठित किया गया। इस इकाई के पास अनुसंधान और विकास से सम्बन्धित सुविधाएँ उपलब्ध रहेंगी। केन्द्रीय नियोजन इकाई लाभार्थियों और वित्तीय सहायता उपलब्ध कराने वाली संस्थाओं के मध्य समन्वय, योजनाओं की मानीटरिंग और लाभार्थियों के लिए नेतृत्व के अवसरों को उपलब्ध करवाने का कार्य करेगी।

उद्योग चयन की प्रकिया

इस प्रयोग के अन्तर्गत लोगों के उद्योग चयन की प्रक्रिया को परिवर्तित कर दिया गया है। इसमें सर्वप्रथम लाभार्थी बाजार की उपलब्धता की पहचान करते हैं। इसके पश्चात् पूरे पंचायत के लिए किसी एक उद्योग का चयन किया जाता है। चयनित उद्योग के लिए ग्राम स्तर पर आवश्यक प्रशिक्षण, कच्चे माल की आपूर्ति एवं कय इत्यादि की व्यवस्था पंचायतों के द्वारा किया जाता है। अभी तक इस कार्यकम में मधुमक्खी पालन, अगरबत्ती, निर्माण, मुर्गीपालन, डेयरी, औषधीय पौधों की खेती, फल एवं सब्जियां उगाना इत्यादि गतिविधियों का चयन किया गया है।

अक्षर अगरबत्ती परियोजना

जिले की निरक्षर महिलाओं को साक्षर करने के लिए **राजीव गांधी शिक्षा मिशन** के द्वारा महिला पढना-बढ़ना आन्दोलन संचालित किया जा रहा है। लेकिन कक्षाओं में महिलाओं की उपस्थिति काफी कम दर्ज हुयी। अधिकांश अशिक्षित महिलाएँ गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले परिवारों की थी। उन्होंने मिशन के मूल्यांकनात्मक बैठकों में यह मांग की कि यदि उन्हें कक्षा के पश्चात कुछ ऐसे रोजगार उपलब्ध कराये जायें, जिससे उनके परिवार का भरण पोषण हो सके, तो वे इस कार्यकम में सक्रिय रूप से भाग ले सकेंगी। उनकी मांग को दृष्टिगत रखते हुए मिशन के द्वारा अक्षर अगरबत्ती नामक परियोजना संचालित की जा रही है। इसके अन्तर्गत राजीव गांधी शिक्षा मिशन का जिला शिक्षा केन्द्र, राज्य नागरिक आपूर्ति निगम और निजी व्यवसायी तीन भागीदार हैं। राज्य नागरिक आपूर्ति निगम के द्वारा निजी व्यापारियों से कच्चे माल लेकर राजीव गांधी शिक्षा मिशन द्वारा निर्मित 120 संकुल शिक्षा केन्द्रों के माध्यम से वितरित किया जायेगा। कुल-2483 स्वयं-सहायता समूहों में 56140 महिला लाभार्थी महिला पढ़ना-बढ़ना आन्दोलन के अन्तर्गत पंजीकृत की गयी है। ये महिलाएँ अब पढ़ाई के पश्चात अपनी कक्षा में ही अगरबत्तियाँ बना रही हैं तथा निर्मित अगरबत्तियों को ग्रामीण प्रेरक के माध्यम से राज्य नागरिक आपूर्ति निगम को बेंच रही हैं। इस प्रक्रिया में प्रति माह रुपये-1,82,00000 मजदूरी के रूप में इन महिलाओं में वितरित किया जायेगा। इससे वे अतिरिक्त आय अर्जित कर सकेंगी। मिशन को यह आशा है कि इस प्रक्रिया से कक्षा में काफी उपस्थिति बढ़ जायेगी और इस प्रकार साक्षरता के साथ रोजगार सम्पन्नता भी सम्भव हो जायेगी।

मधुमक्खी पालन

पन्ना जिले में घने जंगल भी हैं, जो जिले के समस्त भौगोलिक क्षेत्र का 52 प्रतिशत भाग आच्छादित किये हुए हैं। इसके अन्तर्गत पाये जाने वाले पौधों में ऐसे पौधों की मात्रा सर्वाधिक है, जो मधुमक्खी पालन के लिए सहयोगी है। जिले की इस क्षेत्र में चट्टानी शहद का उत्पादन बहुत कम है। अतः मधुमक्खी पालन के लिए पर्याप्त संभावनायें हैं। **राष्ट्रीय मधुमक्खी परिषद्, दिल्ली,** केन्द्रीय मधुमक्खी पालन अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान पुणे और जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय जबलपुर इसके लिए तकनीकी सहयोग प्रदान कर रहे हैं। पंचायतों के द्वारा प्रथम चरण में 2000 परिवारों के लिए यह योजना जारी की गयी है। इसके लिए केन्द्रीय मधुमक्खी पालन अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान पुणे सर्वे और प्रशिक्षण का कार्य करेंगा। एम.पी.एस.एफ. ए.सी. भोपाल के द्वारा जिला प्रशासन के सहायता से प्रशिक्षणार्थियों एवं प्रशिक्षकों का चयन किया जा रहा है। आर्थिक सहायता एवं बाजार की उपलब्धता स्टेट एग्रो

कारपोरेशन भोपाल, एम. पी. एस. एफ. ए. सी., के. वी. आई. सी. और नाबार्ड के द्वारा किया जा रहा है। जिसमें कृषि और सहकारिता विभाग, कृषि भवन, नई दिल्ली को मधुमक्खी पालन के द्वारा उत्पादकता वृद्धि नामक योजना के अन्तर्गत आर्थिक सहायता उपलब्ध कराने के लिए निवेदन किया गया है। के. वी. आई. सी. का मध्य प्रदेश संचालनालय के द्वारा सीमान्त धन योजना के अन्तर्गत सहायता प्राप्त करने का भी प्रयास किया जा रहा है। जिला कृषि विभाग इस योजना का नोडल विभाग निर्धारित किया गया है। प्रारम्भ में प्रत्येक मधुमक्खी पालन कालोनियाँ चिन्हित पंचायत में प्रदान की जाती हैं। जिसमें से प्रत्येक कालोनी में 20000 मधुमक्खी रानी श्रमिक और नर मधुमक्खी प्रदान की जाती है। इसकी कुल लागत 18470/— रुपये आ रहा है। पहले वर्ष 7380 रुपये, दूसरे वर्ष 10680 रुपये तीसरे वर्ष 20280 रुपये तथा चौथे वर्ष 20280 रुपये आय होगी।

मुर्गी पालन

ग्राम स्तर पर ब्रायलर मुर्गे गरीब परिवार के लिए अतिरिक्त आय के श्रोत हैं। चूजे की कीमत जहाँ मात्र 8 रुपये है, वहीं पर एक माह बाद ही उसकी कीमत 40 रुपये प्रति ब्रायलर हो जाती है। इस गतिविधि के लिए पंचायत के द्वारा ऐसे 10,000 परिवार जो गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहे हैं को चयनित किया गया है। इस परियोजना में तीन भागीदार हैं—डिपार्टमेण्ट आफ वेटिनरी, लाइव स्टाक कारपोरेशन, भोपाल और निजी व्यवसायी 120 टी. टी. सी. पर 08 रुपये प्रति चूजे की दर से एक दिन को चूजों की आपूर्ति करेंगे, जहाँ से ग्रामीण अपने चूजे प्राप्त करेंगे। एक माह बाद तैयार 40 रुपये प्रति ब्रायलर की दर से लेकर इसे व्यवसायियों को बेच देंगे। एक इकाई में 02 कि.ग्रा. भोजन दवा और 25 पक्षियाँ जिनकी लागत 800 रुपये है से एक माह बाद 1000 प्रति यूनिट प्राप्त करेंगे। एक वर्ष में चार बार यह प्रकिया चलने के कारण एक परिवार को कुल 4000 रुपये की शुद्ध लाभ की प्राप्ति होती है। इस प्रकार एक साल में 10,000 परिवारों को 10,00,000 चूजों की आपूर्ति होगी जिससे 3,20,00000 रुपये की अतिरिक्त आय होने की सम्भावना है।

औषधीय पौधों की खेती

जिले में औषधीय पौधों को उगाने के लिए करीब 5000 हेक्टेअर जंगल और निजी भूमि चयनित किया गया है। इस गतिविधि में 20,000 परिवारों को वर्ष भर रोजगार मिलने की व्यवस्था है। इस परियोजना को संचालित करने के लिए वन और कृषि विभाग को नोडल विभाग निर्धारित किया गया है। इसके लिए तकनीक, बीज और बाजार की व्यवस्था **लघु वनोपज निगम भोपाल** और **एम. पी. स्टेट एग्रो कारपोरेशन,** भोपाल के द्वारा की जायेगी। व्यावसायिक कृषि के लिए अश्वगंधा, सफेद मूसली, सतावर, कलिहारी, लेमन ग्रास और सनाय इत्यादि को चिह्नित किया गया है। इनकी खेती करने

के लिए गाँव स्तर पर ग्रामीणों को मुख्य प्रशिक्षकों द्वारा प्रशिक्षण दिया जायेगा। वन विभाग और एम.पी. एग्रो के द्वारा बीज और अन्य आवश्यक वस्तुऐं उपलब्ध कराई जायेंगी। भावी मांग को ध्यान में रखते हुए वन विभाग द्वारा बड़े पैमाने पर नर्सरी एवं केन्द्र जो उन्नत बीज पैदा करेंगे की स्थापना की गई है। इस प्रकार उत्पादित माल के कीमत वृद्धि के लिए प्रसंस्करण और भण्डारण की व्यवस्था की जा रही है। इसके लिए तकनीकी ज्ञान प्रदान करने वाले केन्द्र की स्थापना के साथ ही इस वर्ष पूरे समय परियोजना के संदर्भ में लोगों की जागरूकता वृद्धि के लिए प्रयास किये जा रहे हैं।

फल और सब्जियों की खेती

पन्ना जिला के अनेक क्षेत्रों में किसानों को अपने फसल चक्र को परिवर्तित करने के लिए तैयार किया जा रहा है। वर्तमान समय में सिंचित क्षेत्रों में भी फसलों से अत्यन्त ही कम पैदावार होती है। जिन फसलों का उत्पादन होता है उनका विक्रय मूल्य दर कम होने के कारण उनसे आय कम होती है। अतः पंचायतों में किसानों को अधिक आय के लिए सिंचित क्षेत्रों में अधिक कीमत वाली फसलों को उगाने से सम्बन्धित प्रचार किया जा रहा है। कृषि विभाग ने करीब 3000 हेक्टेअर भूमि फल और सब्जियों को उगाने के लिए चयनित किया है। इससे करीब 7000 परिवार रोजगार प्राप्त करेंगे। एम.पी. एग्रो के द्वारा इसके लिए बाजार, बीज एवं अन्य आवश्यक वस्तुएँ प्रदान की जा रहीं हैं। इसके लिए **जवाहर लाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर** तथा **प्रांतीय उद्यानिकी निदेशालय** के सहयोग से तकनीकी सहायता एवं प्रशिक्षण प्रदान किया जा रहा है।

डेयरी

करीब 447 स्व–सहायता समूह तथा 250 निजी कार्य करने वाले लोगों को इस कार्य के लिए अभिप्रेरित किया जा रहा है। इस वर्ष पूरे जिले में 697 डेयरी फार्म की स्थापना का लक्ष्य रखा गया है। पूरे वर्ष करीब 5000 लोगों को इस गतिविधि से रोजगार उपलब्ध होगा। एक डेयरी की इकाई के अन्तर्गत 20 मुर्रा नस्ल की भैसें रखी गईं हैं। एक इकाई की स्थापना का लागत मूल्य करीब 5 लाख रुपये है। इसके लिए समूहों को बैंक से ऋण प्राप्त करने की सुविधा प्रदान की जा रही है। जिसमें स्वसहायता समूहों को सब्सिडी के रूप में 1 लाख 25 हजार रुपये जिला पंचायत से प्रदान किया गया है। इससे समस्त खर्चों को निकालने के पश्चात् प्रत्येक परिवार को प्रतिवर्ष करीब 40,000 रुपये शुद्ध लाभ होगा। इसके लिए वेटनर विभाग को चयनित किया गया है।

पर्यावरण एवं ग्रामीण पर्यटन

जिले में पर्यावरण एवं ग्रामीण पर्यटन तथा साहसिक खेलों को बढ़ावा देने की असीम सम्भावनाए है। इन्हीं सम्भावनाओं को ध्यान में रखकर खजुराहो आने वाले पर्यटकों को आकर्षित करने के लिए पन्ना में कार्य किये जा रहे है। **राष्ट्रीय उद्यान पन्ना** के

आसपास साहसिक खेलों के स्तर विकसित किये जा रहे हैं तथा पर्यावरण पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए 40 किमी. लम्बा ट्रेक विकसित किया गया है। यह सभी गतिविधियाँ स्व-सहायता समूह के माध्यम से संचालित किया जा रहा है। इनमें प्रथम चरण में लगभग 3000 परिवार रोजगार पा सकेंगे।

उक्त सभी व्यवसायों में शासन के विभिन्न विभागों के मध्य समन्वय स्थापित करते हुए सहयोग लिया जा रहा है–

1. शिक्षा विभाग
2. वन विभाग
3. कृषि विभाग
4. पशु चिकित्सा विभाग
5. उद्योग एवं व्यापार विभाग
6. सूचना एवं प्रौद्योगिकी विभाग
7. महिला एवं बाल विकास विभाग
8. पंचायत एवं समाज कल्याण विभाग
9. ग्रामीण विकास विभाग

उपर्युक्त विभागों के अतिरिक्त राजीव गाँधी शिक्षा मिशन, जवाहर लाल कृषि विश्वविद्यालय, खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग, लघु वनोपज संघ, मण्डी बोर्ड, एग्रो इण्डस्ट्री, कुक्कुट विकास निगम, इन्दिरा गाँधी गरीबी हटाओ योजना, नागरिक आपूर्ति निगम, अन्त्यावसायी वित्त विकास निगम, आदि विभागों द्वारा इसमें सक्रिय सहयोग लिया जा रहा है। उक्त सभी के मध्य समन्वय कर उपलब्ध संसाधनों को एकत्रित कर इस परियोजना का कार्य प्रारम्भ हुआ है, यह अभी मात्र शुरूआत है। सहभागियों का उत्साह एवं सफलता पन्ना जिले की आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक तस्वीर बदलने में एवं मानव विकास करने में सहयोगी होगी।

स्वरोजगार की सफलता के बढ़ते कदम

पन्ना जिला में प्रशासन की विशेष पहल से स्वरोजगार हेतु विभिन्न क्षेत्रों के लिए चयनित रोजगार को क्षेत्रीय ग्रामीण जनों के बीच उत्साहित होकर स्वीकार किया गया है। गाँवों की बेरोजगारी दूर कर उन्हें मजबूत बनाने तथा उनके सम्मान को लौटाने के लिए जिले के विभिन्न विभागों के जिला स्तरीय अधिकारियों के द्वारा किये गये प्रयासों के आशातीत परिणाम सामने आ रहे हैं। चयनित रोजगारों में मधुमक्खी पालन, अगरबत्ती निर्माण एवं मुर्गी-पालन हेतु लोगों में विशेष उत्साह देखने को मिल रहा है। जिले की ग्रामीण स्थिति एवं गरीबी को दृष्टिगत करते हुए भी जनपद एवं संसाधन संग्रहण केन्द्रों के स्तर पर योजना बद्ध तरीके से किये गये प्रयासों एवं सम्मेलनों द्वारा लोगों को दी गयी जानकारी से जो परिणाम इस दिशा में सामने आये हैं वह निश्चिय ही आश्चर्य पैदा करने वाले हैं।

रोजगार की दृष्टि से मधुमक्खी पालन ने लोगों में अधिक लोकप्रियता प्राप्त की और इसके परिणाम स्वरूप एम.पी.एग्रो. के द्वारा प्रबन्धन के लिए अभी तक जिले में 24

लाख 50 हजार रुपये जमा किये जा चुके है। इस रोजगार में आने के लिए अभी लोगों के अन्दर रूचि बनी हुई है, परन्तु जिले में प्राप्त संसाधनों के आधार पर अब और लोगों से इस रोजगार से नहीं जोड़ा जा सकता। इसके प्रबन्धन एवं प्रशिक्षण के लिए जिला प्रशासन द्वारा एम.पी.एग्रो. को धनराशि एवं निर्देश जारी कर दिये गये है। जिला प्रशासन मधुमक्खी पालन में प्रयोग किये जाने वाले डिब्बों का निर्माण भी गाँव के विशेषज्ञ बढ़ई एवं लोहारों की सहायता कराने की योजना बना रहा है, जिससे यह एक सहायक रोजगार के रूप में उभर सके।

जिले में महिला पढ़ना-बढ़ना योजना के 2807 महिलाओं के समूह है। इन महिलाओं में पढ़ने की रूचि पैदा करने के लिए अक्षर अगरबत्ती के नाम से रोजगार की योजना अब सफलता पूर्वक प्रारम्भ की जा चुकी है। इसमें महिलाओं की भागीदारी अत्यन्त उत्साह वर्धक है, क्योंकि उन्हें इस रोजगार में अगरबत्ती की सींक (कांड़ी) बनाने के लिए भी एक सहायक रोजगार विकसित किया जा रहा है। मुर्गीपालन रोजगार में जिले के अन्दर 10 हजार परिवारों को लाभान्वित करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है, जिसके अन्तर्गत 4 लाख 70 हजार रूपये जमा कराये जा चुके हैं। इसमें **राजीव गाँधी जल ग्रहण मिशन** के सभी गाँव को प्रशिक्षण एवं चूजे दिये जायेंगें। इसमें जल ग्रहण की महिला साख समूहों को भी जोड़ा जा रहा है। इस तरह पूर्व से निर्धारित समूहों को चूजे प्रदान कर मुर्गीपालन द्वारा और अधिक सशक्त किया जा रहा है और इसमें लोगों का आकर्षण निरंतर बढ़ रहा है। इन गतिविधियों से पन्ना जिले में रोजगार के अवसर की उपलब्धता से ग्रामीण बेरोजगारी दूर होने की सम्भावना बनी है। पूर्ण विश्वास है कि पन्ना जिला का अनुभव पूरे देश के लिये एक उदाहरण बनेगा।

7

ग्रामीण स्वावलंबन एवं सतत् विकास

आजादी के बाद सभी प्रकार के विकास की जिम्मेदारी सरकार ने स्वयं अपने ऊपर ओढ़ लिया। हुआ यह कि जीवन के हर क्षेत्र में सरकार का दायरा बढ़ता गया और समाज का दायरा कम होता गया। परिणाम यह हुआ कि गाँव के लोगों की गाँव के विकास में सहभागिता लगभग खत्म हो गयी, गाँव के हर काम के लिए सरकार का मुँह देखने लगे। गाँधीजी भी पूर्ण आत्म निर्भरता की बात नहीं करते थे, किन्तु वे कहते थे कि हम अपने आवश्यक जरूरतों की पूर्ति गाँव में मौजूद साधनों से कर सकते हैं।

गाँव के विकास में गाँव के लोगों की सहभागिता कैसे बढ़े ? फैसले कैसे लें ? लिये गये फैसले को कार्य रूप में कैसे लागू करें ? कौन लागू करे ? इत्यादि बातों को ध्यान में रखते हुये म. प्र. सरकार ने 26 जनवरी 2001 को ग्राम स्वराज व्यवस्था लागू किया। इस व्यवस्था में ग्राम सभा को सर्वोपरि माना गया। ग्राम सभा की व्यवस्था पंचायतीराज व्यवस्था में भी थी, किन्तु वहाँ वर्ष में ग्राम सभा की चार बैठकों का प्रावधान रखा गया था, किन्तु वर्तमान व्यवस्था में प्रत्येक माह में एक बैठक आवश्यक रूप से हो, ऐसा प्रावधान रखा गया। इस व्यवस्था में गाँव का विकास कैसे हो ? इस बात पर ग्राम सभा में मिल-बैठकर बिन्दुवार बातों को सामने रखकर उस पर गम्भीरता से चर्चा कर फैसला लेने और खुद काम करने का अधिकार मिला। गाँव के सभी लोग रोज बैठकर यह तय नहीं कर सकते कि क्या करना है ? क्या नहीं ? इसीलिये ग्राम सभा के प्रतिदिन के कामों को संचालित करने के लिए स्थायी समितियों का गठन किया गया। इन समितियों में गाँव के अलग-अलग कामों को करने के लिए उन कामों के जानकार और रुचि रखने वाले लोगों की समितियाँ बनाकर जिम्मेदारी सौंपी गयी। इस प्रकार ग्राम स्वराज के द्वारा गाँवों को एक राजनीतिक इकाई की जगह एक सामुदायिक इकाई तथा गाँव के विकास एवं फैसला लेने की व्यवस्था के रूप में पुनः स्थापित करने की एक पहल है, जहाँ सत्ता और अधिकार की जगह लोगों को आपस में मिल-जुलकर, बातचीत और सहमति के आधार पर गाँव को आत्मनिर्भर, ताकतवर तथा स्वाभिमानयुक्त बनाने की बात है।

गाँव स्वाभिमानयुक्त तथा ताकतवर तभी बन सकता है जब गाँव अपने पैरों पर स्वयं खड़ा हो, निर्णय स्वयं ले, अपने जरूरतों की अधिकांश चीजें स्वयं तैयार करें, गाँव

अपनी भूख की पूर्ति के लिए सरकार की ओर न देखे। इसके लिए गाँव में खेती और इससे सम्बन्धित उद्यम के लिए विशेष रूप से ध्यान देने की जरूरत है। गाँव के पैसे का एक बड़ा हिस्सा रासायनिक खादों, कीटनाशकों, बीजों तथा अंग्रेजी दवाइयों के रूप में नगरों की ओर चला जाता है, जिससे गाँव का किसान आर्थिक रूप से कमजोर होता चला जा रहा है। यदि रासायनिक खादों और कीटनाशकों आदि पर खर्च होने वाले पैसे को गाँव में रोक लिया जाय तो गाँवों के विकास के लिए सरकारी सहायता की जरूरत नहीं पड़ेगी। मान लीजिए किसी गाँव में सौ किसान हैं और प्रति वर्ष कम से कम दो हजार रूपये की रासायनिक खाद एवं कीटनाशक आदि पर खर्च करते हैं तो इस प्रकार कुल दो लाख रूपये मात्र खाद एवं कीटनाशकों पर प्रति वर्ष खर्च करते हैं। इसके लिए गावों को जैविक खाद, बीज और देशी कीटनाशकों को बढ़ावा देना होगा।

कृषि समिति

देश में पहली बार ग्राम सभा को खुद काम करने का मौका मिला है। इसमें गाँव की जिन्दगी से जुड़े सभी व्यावहारिक काम तथा सरकारी काम भी शामिल हैं। इसको सही ढंग से करने के लिए 8 स्थाई समितियों की व्यवस्था है। ये 8 समितियाँ ग्राम स्वराज यानी गाँव में गाँव वालों के अपने राज को मजबूती देने वाली व्यवस्था है। इन आठों समितियों में आपस में अन्तर सम्बन्ध भी है। अगर एक भी समिति अपना काम ठीक ढ़ंग से नहीं कर पा रही है तो उस गाँव का पूरा विकास नहीं हो सकता। जैसे मनुष्य के शरीर का कोई भी अंग ठीक ढंग से काम न करे तो मनुष्य की कार्य क्षमता प्रभावित हो जाती है तो वह विकलांगता की श्रेणी में आ जाता है। इन्हीं समितियों में एक कृषि समिति भी है। गाँव की खेती यदि अच्छे तरीके से की जाय तो अच्छी फसल होगी। इसके लिए कृषि समिति का काम है कि खेती और इससे सम्बन्धित सभी जानकारी गाँव वालों को दें। यदि अच्छी फसल होगी तो खाना अच्छा मिलेगा, अगर अच्छा खाना मिलेगा तो बीमारी भी कम होगी, लोगों का स्वास्थ्य अच्छा होगा तो सामाजिक न्याय का उद्देश्य भी प्राप्त होगा तथा भूख से मौतें नहीं होंगी और गाँव में अधिक खुशहाली आयेगी। आर्थिक खुशहाली से लोगों के अन्दर मेल-मिलाप समरसता की भावना का जन्म होगा तथा खुशहाल गाँव का उदय होगा।

कृषि समिति का खेती से जुड़े काम

कृषि—समिति गाँव की खेती तथा खेती से जुड़े पारम्परिक गतिविधियों को बचाने और बढ़ावा देने वाली समिति है। कृषि समिति के प्रमुख उद्देश्य अग्र प्रकार हैं—

- परम्परागत खेती की विधियों का संरक्षण तथा उन्हें बढ़ावा देना।
- जैविक खेती को बढ़ावा देकर गाँव को आत्मनिर्भर बनाने का कार्य करना।
- खेती से जुड़े काम धन्धों को ज्यादा अच्छा तथा उत्पादक बनना।
- खेती से सम्बन्धित सहायक उद्यानों के विकास पर ध्यान देना।
- मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार भूमि संरक्षण, जल संरक्षण एवं संवर्धन के लिय प्रयास करना।

कृषि समिति के कार्य–

कृषि समिति के पास निम्न विभागों से जुड़े काम का दायित्व हैं–

1. कृषि विभाग,
2. सहकारिता विभाग,
3. मृदा संरक्षण विभाग,
4. मछली विभाग,
5. पशु विभाग,

1. कृषि विभाग से सम्बन्धित समिति के कार्य–

- किसानों को मिट्टी की गुणवत्ता की जाँच कराने के लिए प्रेरित करना।
- ऊसर भूमि या पड़त भूमि के विकास की योजना कृषि विभाग के विशेषज्ञों से मिलकर बनाना ।
- परम्परागत फसलों के उत्पादन का आंकलन करना तथा और उत्पादकता बढ़ाने के लिये आवश्यक उपकरण या तकनीकी जानकारी के लिये ग्रामीण कृषि विस्तार अधिकारी से सम्पर्क करना।
- कृषि विभाग द्वारा चलाये जा रहे कार्यक्रमों की जानकारी तथा उनकी प्रगति ग्राम सभा को बताना तथा कियान्वयन पर नजर रखना एवं उपयोगिता प्रमाण–पत्र भेजना।
- जल आपूर्ति क्षमता बढ़ाने हेतु कार्य करना जिससे पानी रोकने की योजना बनाने, वर्तमान जल आपूर्ति की क्षमता जाँचने, पानी रोकने के लिये जन जागरण करना तथा आवश्यक परामर्श सम्बन्धित अधिकारी से लें।
- छोटी–छोटी सिंचाई योजनाओं की देखरेख सम्बन्धी कार्य करना।
- कृषि विकास कार्यकम के लिये हितग्राही का चयन करवाना तथा चयनित हितग्राहियों का ग्राम सभाओं से अनुमोदन करवाना। इसका चयन ग्रामीण कृषि विस्तार अधिकारी एवं ग्रामीण उद्यान विस्तार अधिकारी द्वारा किया जायेगा।

- गाँव में उद्यानिकी विकास के कार्यक्रमों को बनवाना तथा उसका अनुमोदन ग्राम सभा द्वारा करवाना।

2. पशुपालन विभाग से सम्बन्धित समिति के कार्य–

- पशु उपचार की व्यवस्था तथा पशु उपचार शिविरों की व्यवस्था पशु चिकित्सालयों के सक्षम अधिकारियों से मिलकर सुनिश्चित करवाना।
- प्रशिक्षित गौ सेवकों की जानकारी रखना तथा पशु-पालकों को गौ-सेवकों के माध्यम से इलाज कराने के लिये प्रेरित करना ।
- पशु नस्ल सुधार के लिये कृत्रिम व प्राकृतिक गर्भाधान हेतु पशु पालकों को प्रेरित करना और विभाग द्वारा जहाँ कृत्रिम गर्भाधान की सुविधा नहीं है, वहाँ प्राकृतिक गर्भाधान हेतु गौ-सेवकों व पशु-पालकों को अनुदान पर उन्नत नस्ल का साँड़ उपलब्ध करवाने की व्यवस्था करना।
- बाँधकर पशु रखने के लिये पशु-पालकों को प्रेरित करना और होने वाले लाभों को बताना।
- दुग्ध उत्पादन एवं पशुओं के स्वास्थ्यं के लिये चारे के विकास हेतु चारागाहों को संरक्षित रखकर चारागाह विकसित करवाना तथा चारागाहों पर अवैध कब्जों की जानकारी सक्षम अधिकारी तक भिजवाकर हटवाने का प्रयास करना।
- पशुपालन सम्बन्धी योजनाओं की जानकारी विभाग से प्राप्त कर इच्छुक व्यक्ति / समूह तक देना साथ ही प्रस्ताव बनवाना और उसे भिजवाकर स्वीकृति प्राप्त करना।
- कृषि विभाग के सहयोग से समय पर रोग निरोधक टीके लगवाने की व्यवस्था करना।
- संकामक रोग या महामारी फैलने पर रोकथाम के लिये नजदीकी **औषधालय / पुलिस थानों / तहसील** आदि को सूचित करवाना, बीमार / मृत पशुओं के नमूनों की जाँच करवाकर मृत्यु के कारणों का पता करवाना ।
- नस्ल सुधार हेतु निकृष्ट साँड़ों के बधियाकरण के लिये निम्न विभाग के सहयोग से अभियान चलाकर कार्य को संचालित करना।

3. मछली पालन विभाग से सम्बन्धित समिति के काम–

- मत्स्य पालन हेतु तालाबों की सूची तैयार करना।
- स्थानीय मछुआरों के समूहों को चिन्हित करना तथा सबसे पुराने समूह / समिति को पट्‌टे देने की सिफारिश करना।
- एक हेक्टेयर से कम जल क्षेत्र वाले तालाबों के पट्‌टे देने का फैसला देना।

उपरोक्त कामों के लिये विभाग से सहयोग लेना।

सहकारिता विभाग--

- किसानों को सहकारी बैंकों से कृषि हेतु दी जाने वाली सहायता एवं योजनाओं की जानकारी देना।
- कृषि उपज का सही मूल्य मिल सके इसके लिये खरीद केन्द्रों की जानकारी उपलब्ध कराना तथा इसके लिये सहयोग प्रदान करना।
- गाँवों में सहकारिता की भावना के विकास हेतु कार्य करना गरीबी रेखा से नीचे जीवन–यापन करने वाले लोगों को सस्ते मूल्य पर मिलने वाले पर खाद्यानों की उपलब्धता सुनिश्चित करवाना।
- सहकारी बैंकों से लिये गये कर्जों की अदायगी के लिये प्रेरित करना।
- सहकारी समितियों के सदस्य बनवाना और गठन कराना।
- कृषि तथा उससे सम्बन्धित क्षेत्रों में सहकारिता आधारित गतिविधियों को बढ़ावा देना।
- कृषि कार्यों हेतु अल्पकालीन ऋण एवं कृषि आदान की योजना से कृषकों को अवगत कराना।
- फसल बीमा से कृषकों को अवगत कराना।
- सहकारी उर्वरक बीमा योजना से कृषकों को अवगत कराना।
- ग्रामीण भंडार एवं ग्रामीण आवास योजना से हितग्राहियों को अवगत कराना।
- कुटीर एवं गृह सम्बन्धी योजनाओं तथा अन्य से ग्रामीण योजना से अवगत कराना।
- भूमिहीन ग्रामीणों को मछली पालन, पशुपालन, खनिज एवं श्रमिक समितियों के गठन हेतु प्रेरित करना।

5. मृदा संरक्षण–

- ऊसर एवं पड़त भूमि की जानकारी एकत्रित करना।
- इस जमीन के विकास की योजना तैयार करना।
- मृदा की गुणवत्ता की जाँच करना।
- मृदा कटाव रोकने सम्बन्धी जानकारी।

जैविक कृषि

भारत में रासायनिक खादों की खेती बढ़ती गयी, उत्पादन में भी लगातार बढ़ोत्तरी होती गयी किन्तु कुछ समय बाद बढ़ोत्तरी रूक गई। देश के कुछ प्रदेश रासायनिक खादों की मात्रा बराबर बढ़ाते गये फिर भी उत्पादन में वृद्धि नहीं हुई तथा

भूमि की पैदावार घटती गयी। रसायनों से कीड़ों को मारने की योजना पूर्णतया फेल हो चुकी है। अब कीड़े और भयानक रूप से किसानों को परेशान किये हुये हैं। संकर बीज शुरूआत में अच्छी पैदावार दिये परन्तु बाद में सभी फसलों के उत्पादन स्तर को बरकरार नहीं रख पाये। रासायनिक खेती से हमारा भोजन, पानी भी जहरीला हो गया। इस कारण नाना प्रकार की बीमारियाँ होने लगी।

इस स्थिति में उन तरीकों पर विचार करना है जो खेती में स्थिर उत्पादन दें। प्रकृति के अनुसार हों, प्रदूषण से मुक्त हों, कम लागत वाली हों, मिट्‌टी की पैदावार हमेशा बनी रहे तथा आने वाली पीढ़ी को जहर मुक्त खाद्य पदार्थ प्राप्त हो। उपरोक्त विचार के लिये सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह है कि रसायनों ने सोचने की हमारी बुद्धि को नष्ट कर दिया और किसानों के अन्दर रासायनिक खादों, दवाइयों, संकर बीजों के प्रति अति श्रद्धा पैदाकर दी है। इसके अलावा हमें अपने दृष्टिकोण को बदलना होगा। रासायनिक खादों के दुष्प्रचार के बावजूद जैविक खेती की शुरूआत करने का साहस दिखाना होगा। इसके लिये हमें किसी एक खेत में प्रयोग के तौर पर दो-तीन वर्ष तक जैविक खेती का प्रयोग करके स्वयं निर्णय लेना होगा कि हमारे लिये कौन-सी खेती अच्छी है।

जैविक खेती क्या है ?

प्रकृति में मौजूद खेती के लिये लाभकारी सूक्ष्म तथा अति सूक्ष्म जीवाणुओं से खेती को ही जैविक खेती कहा जा सकता है। पत्ती, घास-फूंस, कपास, अरहर, ज्वार के डण्ठल, भूसा, गोबर, गोमूत्र, खली आदि सेन्द्रिय वस्तुओं से बनी खाद को जैविक खाद कहते हैं।

देखा यह गया है कि रासायनिक खाद का जादू किसान और सरकार पर प्रारम्भ में चला। इसका मूल कारण यह था कि जमीन में एक चम्मच मिट्‌टी में जो लाखों करोड़ों जीवाणु है। उनके मरने से उनकी खाद बनी। उससे प्रारम्भ में बढ़िया फ़सल मिली। अब उन जीवाणुओं की संख्या नष्ट प्रायः होने से रासायनिक खाद अधिक मात्रा में डालने के बाद भी फसल का उत्पादन घटने से इस खाद की शक्ति की पोल खुल गई।

यदि प्रकृति को देखें तो जंगलों में बड़े पेड़ कई वर्षों तक किसकी मदद से बढ़ते हैं ? कौन उन्हें खाद देता है ? यदि कोई वृक्षारोपण करता है तो रासायनिक खाद नही देकर कम्पोस्ट (देशी) खाद ही देता है, अगर उन वृक्षों को बिना रासायनिक खाद से तैयार किया जा सकता है तो फसलों की खेती बिना रासायनिक खादों से क्यों नहीं हो सकती ? इन देशी खादों के प्रयोग के द्वारा अपनी मिट्‌टी को स्वस्थ्य रखा जा सकत है। यह खाद न केवल उत्पादन बढ़ा सकती है बल्कि खाद में आत्मनिर्भरता प्राप्त करके एक गाँव में लाखों रुपये की बचत की जा सकती है। इस जैविक खाद के प्रयोग के द्वारा किसान खेती में पूर्ण आत्मनिर्भर हो सकता है। यह आत्म निर्भरता निम्न क्षेत्रों में दिखाई देती है–

1. खाद स्वावम्बन 2. बीज स्वावलम्बन 3. फसलोपचार स्वावलम्बन 4. भण्डारण स्वावलम्बन 5. ऊर्जा स्वावलम्बन।

1. खाद स्वावलम्बन–रासायनिक खादों के लम्बे समय तक के प्रयोग से होने वाली हानियों ने सारे विश्व को चौंका दिया है। अमेरिका में 27 करोड़ जमीन रासायनिक खादों से बन्जर हो गयी है। यदि अपने देश में ये स्थिति रही तो वह दिन दूर नहीं होगा जब खेती योग्य भूमि बन्जर हो चुकी होगीं। खाने-खाने के लिये मौहताज होंगे। यह एक प्रकार से पैसा देकर संकट मोल लेने वाली बात है।

उपरोक्त समस्याओं का सामना हम जैविक खाद बनाकर कर सकते हैं तथा रासायनिक खाद बनाने वाली कम्पनियों के ऊपर की निर्भरता कम होगी साथ ही किसान स्वावलम्बी बनेंगे। जैविक खाद बनाने की कई पद्धतियाँ है जिनमें प्रमुख रूप से दो तरीकों पर चर्चा करना उपयुक्त होगा।

(क) नाडेप खाद (ख) केंचुए की खाद

(क) नाडेप खाद–

यह कम से कम गोबर का उपयोग करके अधिक मात्रा में खाद बनाने का तरीका है इसमें नाइट्रोजन का प्रतिशत अधिक होता है। खेती के लिये अच्छी खाद मिलने के अलावा एक लाभकारी धंधा भी बन सकता है। यह खाद बनाने के लिये जैविक कचरा; जैसे–कपास, अरहर, ज्वार, गेहूँ, गन्ना के अवशेष तथा सभी प्रकार के खरपतवार सभी प्रकार के पौधों के गीली सूखी पत्तियाँ; जैसे-बेशरम या जिन्हें पशु नहीं खाते ऐसी पत्तियों का उपयोग कच्चे माल के रूप में किया जाता है। इसके अलावा गोबर तथा पानी की आवश्यकता पड़ती है। नाडेप खाद बनाने के लिये नाडेप टाँके की आवश्यकता पड़ती है जिसमें खरपतवार गोबर इत्यादि का प्रयोग किया जाता है।

नाडेप टाँका बनाने का तरीका–इसके लिये 12 फुट लम्बा, 5 फुट चौड़ा, 3 फुट ऊँचा आयताकार टाँका बनायें। नाडेप टँका पूर्व-पश्चिम दिशा में बनाना ज्यादा उपयुक्त होगा। इसमें कुल 60 छिद्र होने चाहिए। लम्बाई वाले दोनों हिस्सों में 20–20 छिद्र होंगे। प्रत्येक दीवार में छिद्रों की तीन-तीन पंक्तियाँ होंगी। लम्बादी वाली दीवारों में प्रथम पंक्ति में 5, द्वितीय पंक्ति में 7 तथा तृतीय पंक्ति में 8 छिद्र होंगे। इसी तरह चौड़ाई वाली दीवारों में 10–10 छिद्र होंगे। प्रथम पंक्ति में 5, द्वितीय पंक्ति में 3 तथा तृतीय पंक्ति में 2 छिद्र होंगे। इस तरह चारों दीवारों में कुल 60 छिद्र होंगे। इसके लिये पकी ईंटों का प्रयोग करना अच्छा रहता है। ईंट न होने पर स्थानीय स्तर पर पत्थर, बाँस अथवा बेशरम आदि के द्वारा भी कच्चा नाडेप बनाया जा सकता है।

टाँका भरने का तरीका–

- सबसे पहले टाँके की सतह (परत) को गोबर के घोल से भिगो दें (तर कर लें)।
- कचरे की 6 इंच (एक बित्ता) मोटी परत बिछाकर गोबर घोल से तर कर लेवें।
- कचरे के ऊपर 3 इंच (चार अंगुल) भुरभुरी मिट्टी बिछायें। पुनः इसके ऊपर 6 इंच मोटी कचरा बिछाकर गोबर घोल से तर कर दें।
- इस प्रकार टाँके के ऊपर तक कचरा, गोबर घोल व मिट्टी की परत बिछायें।
- निर्माण के 15–20 दिन बाद कचरा मिट्टी सिकुड़ कर 10–12 इंच नीचे बैठ जायेगा। इसे पुनः पूर्वानुसार कचरा गोबर घोल व मिट्टी से भरे ।
- अंत में गीली मिट्टी से छापकर गोबर से लिपाई कर देवे।
- नाडेप कम्पोस्ट को और अधिक शक्तिशाली बनाने के लिये राक, फास्फेट, P.S.B कल्चर और एजेक्टों बैक्टर का उपयोग किया जा सकता है।

राक, फास्फेट का उपयोग–जब कचरे की परत बना चुके हों तब लगभग 15 से 20 किलो राक, फास्फेट की परत बिछा दें फिर मिट्टी की लगभग 1 अंगुल मोटी परत बिछा दें यही कम जब तक टाँका न भर जाय तब तक दुहराते रहें।

नाडेप टाँके में खाद उसे भरने के बाद करीब 4 माह में पक कर तैयार हो जाती है। पकी हुई खाद गहरे भूरे रंग की दुर्गन्ध रहित तथा भुरभुरी होती है। एक टाँके से एक बार में पौन टन यानी 30 क्विंटल खाद प्राप्त होती है।

हरी खाद–बाराह संहिता में हरी खाद का ज़िक मिलता है। बारिश के दिनों में जहाँ फसल संभव न हों अथवा जहाँ सिचाई के साधन हों ऐंसे वा इलाकों में आसानी से हरी खाद बन सकती है। द्विदल वनस्पति और अधिक पत्ते वाली वनस्पति जैसे–सनई, ढेचा, बावची, जंगली नील, चबला, उर्द, मूंग, कुलथी, गुबार, मोट, मटर, सोयाबीन आदि फसलों का उपयोग हरी खाद के लिये किया जाता है। बारिश का समय देखकर फूल आने से पहले उनको खेत में जुताई करके गाड़ दिया जाता है। इससे जमीन को आवश्यक तत्व मिलते हैं, खरपतवार नष्ट होते हैं। जमीन में सेन्द्रिय पदार्थ घटते हैं। पानी की पकड़ की क्षमता बढ़ती है। जब हरी वनस्पतियाँ खाद के रूप में परिवर्तित होती है, तब जमीन का तापमान बढ़ता है, जिससे फसलों को नुकसान पहुँचाने वाले कीट नष्ट होते हैं, मिट्टी की उर्वरक क्षमता में वृद्धि होती है।

बीज स्वावलम्बन–

गर्भस्थ शिशु जब माँ के पेट में होता है तब अपनी माँ से ही पोषण लेता हैं। वैसे तो बीज का अंकुर जो निकलता है, शुरू में जड़े न होने के कारण वह बीज से ही पोषण लेता है। यही कारण है कि बीज जितना पुष्ट और स्वस्थ्य होगा उतना ही अंकुर पुष्ट और स्वस्थ्य होगा। उसके आगे बीमारियाँ कम होगी।

बीजों का पुष्ट एवं रोग मुक्त रखने के लिए बोनी के समय उनका उपचार किया जाता है। अभी तक उपचार के लिए रासायनिक पदार्थों जैसे पारा युक्त दवायें जैसे थीरम एग्रोसम इत्यादि मिलाया जाता है। इनमें काफी पैसा खर्च होता है। अब बीज की तैयारी एवं बीजों के उपचार के वैज्ञानिक देशी तरीकों के माध्यम से बीज स्वावलम्बन कृषक प्राप्त कर सकते हैं। बीजों के लिए स्वावलम्बी बनाने के लिए यहाँ पर कुछ बीज संरक्षण एवं बीजोत्पादन के कुछ सरल तकनीकों को यहाँ दिया जा रही है–

बीजोत्पादन से स्वावलम्बन–

बीज खेती की नींव है। कहा गया है कि जैसा बीज बोओगे, वैसा बीज काटोगे। उसका मतलब यह है कि बीज की शुद्धता पर पौधों का अंकुरण बढ़ता हैं, और क्षमता शुद्ध होती है। शुद्ध बीज प्रायः जो बाजारों से लिया जाता है काफी मध्यम दर्जे का होता है। अतः सभी किसान उन्नत किस्म के बीजों से होने वाले लाभ नहीं ले पाते हैं। यहाँ पर शुद्ध बीज घर में ही प्राप्त करने के कुछ तरीके बताये जाते हैं–

- उत्कृष्ट क्षमता वाले खेत का चयन बीज उत्पादन के लिए किया जाना चाहिए।
- जिस किस्म का बीज प्राप्त करना है उसके आस-पास दूसरे किस्म के बीज नहीं होने चाहिए।
- बीज के लिए चयन किये गये बीज पूर्णतः शुद्ध होने चाहिए।
- यद्यपि पंजीकृत बीज बेचने वालों के यहाँ से प्रायः उपचारित बीज ही प्राप्त होता है, लेकिन यदि बीज उपचारित न हो तो बोने से पहले बीज को उपचारित करना चाहिये।
- बुआई उचित समय पर ही करना चाहिए।
- अवांछित पौधों एवं खरपतवारों इत्यादि को नष्ट कर देना चाहिए।
- बीज के लिए बोई गयी फसल को उचित मात्रा में गोबर इत्यादि की खाद का इस्तेमाल करना चाहिये। इसमें जैविकं खाद विशेष उपयोगी होती है।
- बीज वाले पौधों पर समय-समय पर पानी अवश्य देना चाहिए।
- पूरी तरह से पक जाने पर बीज के पौधे की कटाई कर लेनी चाहिए।
- पौधों से बीज को निकालकर अच्छे से सुखाया जाना चाहिए।
- सूखे हए बीजों को साफ-सुथरे पक्के गोदामों में जूट वाली बोरियों में इस प्रकार से भरवाकर रख देना चाहिये कि कीड़े, चूहे इत्यादि का प्रकोप न हो।

बीज संरक्षण–

बीजों के लिए एक आदर्श भण्डार वही है जहाँ उचित तापक्रम, चूहे एवं अन्य कीड़ों से मुक्ति है। साथ ही बीजों के साथ बीजों की प्रजनन क्षमता बनाये रखने की व्यवस्था हो। भण्डारण से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण उपाय दिये जा रहे हैं–

1. भण्डारण के पूर्व गोदाम को अच्छे से साफ कर लें ।
2. फर्शों, दीवारों, छतों इत्यादि में आये सभी दरारों को बन्द कर देना चाहिये।
3. चूहे के बिलों को विशेष रूप से बन्द कर देना चाहिए।
4. बीजों को अच्छी तरह सुखा देना चाहिये जिससे उसमें नमी न हो।
5. पर्याप्त सफाई के बावजूद कुछ नुकसान दायक कीड़े रह जाते हैं। इनके लिए कुछ दवाइयाँ प्रयोग की जा सकती हैं जैसे–1. डी. डी. पी. 2. फ्रेम स्प्रे उपरोक्त कार्यों के बाद उच्च गुणवत्ता वाले स्वास्थ्य एवं शुद्ध बीजों को निर्धारित आकार के पैकेटों में बन्द करके अच्छी तरह से सिलाई कर दिया जाना चाहिये। इसके बाद उपरोक्त विधि से तैयार भण्डार गृह में रखना चाहिये। रखते समय कुछ भूसा रख देना चाहिये। बोरों की बोरियाँ दीवार से कम से कम डेढ़ फिट की दूरी से ही लगानी चाहिए। इसके पश्चात ऊपर से भी इतना भूसा रखना चाहिये जिससे कि सबसे ऊपर की परत भूसे से कम से कम 2 फिट नीचे रहे।

ऊर्जा स्वावलम्बन–

सम्पूर्ण प्रकृति चलायमान रखने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है। प्राकृतिक ईंधन को बनाने में लगने वाला समय, आवश्यकता के अनुपात में बहुत अधिक होता है अतः क्यों न ईंधन खुद बनायें ? हमारे देश की ग्रामीण जनसंख्या के लिए बायोमास ऊर्जा उत्पादन के लिए व्यापक स्रोत है। बहुतायत में पाये जाने वाले बायोगैस से सुव्यवस्थित ढंग से ऊर्जा उत्पादन में उपयोग किया जाय तो ग्रामीण ऊर्जा की आवश्यकता को पूरा किया जा सकता है।

वर्तमान समय में विश्व में सर्वाधिक खतरनाक चुनौती ऊर्जा से है। ईराक पर अमेरिकी आक्रमण से पेट्रोल, डीजल एवं गैस के भाव आसमान छूने लगे। अन्धाधुन्ध वनों की कटौती हमारे लिए लकड़ी के रूप में उपलब्ध होने पर ऊर्जा का स्रोत भी समाप्त होता जा रहा है। इसके विपरीत खेती व्यवसाय एवं घरेलू उपयोग इत्यादि के लिए आवश्यक ऊर्जा की मांग निरन्तर बढ़ रही है। इसके लिए आज हम दूसरे देशों के मोहताज हैं। ऊर्जा के स्रोत या तो कम हो रहे हैं या नष्ट हो रहे हैं।

ग्राम स्वराज व्यवस्था जिसमें गाँवों को स्वावलम्बी बनाना है वह ऊर्जा स्वावलम्बन के बगैर संभव नहीं है। ग्रामीण ऊर्जा स्वावलम्बन का सबसे कम श्रोत गाँवों में गोबर है। गोबर ऊर्जा का अनन्त स्त्रोत है। देश में विद्यमान ऊर्जा संकट के समाधान के लिए गोबर वैकल्पिक ऊर्जा स्रोत के रूप में विकसित हो रहा है। इसके द्वारा बायोगैस संयन्त्र नाडेप इत्यादि के माध्यम से किसानों को खाना पकाने के लिए बल्ब जलाने के लिए और छोटी-मोटी मशीन चलाने के लिए साफ-सुथरा और प्रदूषण रहित ईंधन मिलता है इसके साथ ही साथ इससे उत्तम गुणवत्ता वाली खाद की प्राप्त होती है जो फसलों की पैदावार को बढ़ाती है।

भविष्य में आने वाली समस्याओं को ध्यान में रखा जाय तो संयन्त्र निर्माण से घर का कायाकल्प किया जा सकता है। घर की महिलाओं की जिंदगी, रहन-सहन, दिनचर्या बदल सकते हैं। गैस पर खाना बनाना मतलब न धुआँ न धुएं की गन्दगी। साफ-सुथरा चौका और स्वस्थ्य परिवार। वर्तमान में बिजली व मिट्टी के तेल के संकट से सभी वाकिफ हैं। घर में बायोगैस लगायें और ईंधन बचाये। खाद, बिजली एव मिट्टी के तेल में होने वाले खर्च को बचायें। लकड़ी की बढ़ती समस्या से खत्म होते जंगल वर्षा न होने का पर्याय बन चुके हैं।

बायोगैस क्या है ?

बायोगैस के रूप में एक स्वच्छ ईंधन है, जिसमें 55 से 70 प्रतिशत ज्वलनशील मीथेन गैस होती है। इसका निर्माण पशुओं के गोबर से पाचन क्रिया द्वारा एक विशेष प्रकार के संयंत्र में किया जाता है जैसे गोबर गैस या "बायोगैस संयंत्र" कहा जाता है। इस पाचन क्रिया से गोबर की उर्वराशक्ति कम कम होने के बजाय बढ़कर लगभग डेढ़ गुना हो जाती है।

बायोगैस संयंत्र के लाभ–

- बायोगैस संयंत्र से ईंधन व अच्छी खाद प्राप्त करना।
- महिलाओं / बच्चों को खाना बनाने में सहूलियत होना।
- जंगल से लकड़ी एकत्र करने से तथा गोबर के कण्डे बनाने से मुक्ति।
- रसोई घर में धुएं से छुटकारा।
- नेत्र एवं फेफड़े आदि के कई रोगों से बचाव।
- खाना पकाने से समय की बचत के साथ-साथ बर्तन भी काले नहीं होते।
- बायोगैस संयंत्र को घर के शौचालय से जोड़ दिया जाता है तो गाँव की सफाई व्यवस्था में भी सुधार हो सकता है।
- गैस से प्रकाश व्यवस्था का होना।
- सिंचाई हेतु इंजन भी चलाये जा सकते हैं।

बायोगैस संयन्त्र लगाने के लिये आवश्यक बातें–

बायोगैस संयंत्र लगाने हेतु इच्छुक व्यक्ति के पास पर्याप्त संख्या में पशु होने चाहिये। यदि पशु दिन भर खूंटे पर बंधे रहते हों तो अच्छा होगा अन्यथा स्वतंत्र रूप से जंगल में चरने वाले पशुओं से रात भर का ही गोबर मिलेगा। ऐसी स्थिति में यह निश्चय करना आवश्यक होगा कि कम से कम 25 किलो गोबर प्रतिदिन मिल सके, ताकि सबसे छोटा एक घन मीटर का संयन्त्र लगाया जा सके। इसके अतिरिक्त संयन्त्र लगाने के लिये

ऊँची, खुली व समतल जगह चाहिए जहाँ दिन में ज्यादा समय तक धूप रहती हो। यह जगह रसोई व गौशाले से नजदीक व कुएं तथा हैंडपम्प से कम से कम 15 मीटर दूर होना चाहिये।

संयंत्र के आकार व प्रकार का चयन–

गोबर की वास्तविक रूप से उपलब्ध मात्रा और गैस की जरूरत के अनुरूप संयन्त्र की क्षमता का चयन निम्न विवरण अनुसार तकनीकी व्यक्ति (कृषि विभाग के अधिकारी/ एम. पी. एग्रो इण्डस्ट्रीज कार्पोरेशन के तकनीकी व्यक्ति) के मार्ग दर्शन में करना चाहिये।

संयन्त्र की क्षमता (प्रतिदिन गैस उत्पादन घ०मी० में)	प्रतिदिन आवश्यक गोबर की मात्रा कि०ग्रा० में	गोबर के लिए आवश्यक वयस्क पशुओं की अनुमानित संख्या		कितने लोगों का भोजन तैयार होगा
		खुले जंगल में चरने वाले पशु	दिनभर बंधे रहने वाले पशु	
1	2	52–3	4–6	3–4
2	50	4–6	10–13	5–8
3	75	7–9	14–18	8–12
4	100	10–12	20–25	12–16

प्रमुख रूप से निम्न तीन प्रकार के बायोगैस संयंत्र स्थापित किये जा रहे हैं।

1. तैरते हुए गैस होल्डर वालों के व्ही.आई.सी. प्रकार का संयंत्र।
2. स्थिर गुबंद वाला जनता मॉडल का संयंत्र।
3. संशोधित स्थिर गुंबद वाला दीनबंधु संयंत्र।

इनके अतिरिक्त प्रगति मॉडल के व्ही. आई. सी. प्रकार पूर्व निर्मित लोह सीमेंट डाइजेक्टर युक्त संयंत्र, बेगटाइप डायजेस्टर तथा फाइबर ग्लास के ड्रम युक्त संयंत्र भी स्थापित किये जा सकते है।

संयंत्र के प्रकार का चयन करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि यदि चयनित संयंत्र की आवश्यकता के अनुरूप वर्ष भर गोबर उपलब्ध रहता हो तो स्थिर गुंबद वाला संयंत्र लगाना चाहिये यदि वर्ष में गोबर की उपलब्धता घटने की सम्भावना रहती हो तो के. व्ही. आई. सी. प्रकार के संयन्त्र को प्राथमिकता देनी चाहिए।

बायोगैस संपर्क की स्थापना हेतु किससे संपर्क करें–

बायोगैस संयंत्र की स्थापना हेतु इच्छुक व्यक्ति निम्नांकित व्यक्तियों से संपर्क करें–

- अपने क्षेत्र/गॉव/विकास खण्ड/जिले के कृषि विस्तार आधिकारी/अनुविभागीय कृषि विस्तार अधिकारी/उपसंचालक कृषि।

- एम.पी. स्टेट एग्रो इण्डस्ट्रीज कार्पोरेशन के जिला प्रबंधक को आवेदन करें।

यदि बैंक ऋण की आवश्यकता हो तो इन्हीं के माध्यम से ऋण स्वीकृत हेतु प्रकरण बैंक को भेजे जाते है।

बायोगैस संयन्त्र निर्माण की आवश्यक बातें–

- स्थान का चयन एवं गड्ढे के नीचे के गोल भाग की खुदाई तकनीकी व्यक्ति/मिस्त्री की उपस्थित में करायें।
- यदि खोदे गये गड्ढे की मिट्टी काली या नरम है यानी ठोस सतह नहीं है तो सोलिंग व आवश्यकतानुसार लोहे की छड़ लगाकर ही संयंत्र का निर्माण प्रारम्भ करायें।
- संयंत्र निर्माण में लगने वाली ईंट,रेत,गिट्टी और सीमेंट स्तरीय हो और निर्माण प्रशिक्षित मिस्त्री द्वारा ही करवाया जाय।
- निर्माण के दौरान दो–तीन सप्ताह तक अच्छी तराई होनी चाहिए ताकि सीमेंट अच्छी तरह से सेट हो सके।
- निर्माण पश्चात डोम के ऊपर 6 इंच मिट्टी अवश्य भरें और ऐसी व्यवस्था करें कि बरसात में मिट्टी बह न पाए।
- आउटलेट टंकी को ढकने हेतु इस लैब का निर्माण संयंत्र निर्माण के साथ ही करवा लें अथवा फर्शी से ढ़क कर रखें।
- संयंत्र में पाइप फिटिंग तकनीकी सहायक की देखरेख में पलम्बर से करवाना चाहिये और बर्नर का क्रय आई.एस.आई. मार्का देखकर करें।

बायोगैस संयन्त्र चालू करने हेतु आवश्यक सावधानियाँ–

- प्रयास करें कि संयंत्र की भराई एक दिन में पूरी हो यदि ऐसा नहीं हो पाता तो 3–4 दिन में जरूर हो जायें, और ध्यान रखें कि उपयोग में लाया जाना वाला गोबर सूखा न हो ।
- गोबर और पानी बराबर-बराबर मात्रा में घोल बनाकर भरें। ध्यान रहे कि कंकड़-पत्थर, कचरा आदि न जाये।
- गोबर और पानी का घोल आउट लेट टंकी की बीच वाली सीढ़ी तक भरना चाहिये। इसके बाद गेट वाल्व बंद कर देना चाहिए।
- जब स्लरी आउट लेट के छेद तक आ जाये तब चूल्हे को जलाकर देखें। स्लरी बाहर निकलना प्रारम्भ हो जाये तो गैस का इस्तेमाल व दैनिक भराई प्रारम्भ करना चाहिए।

- प्रति दिन 25 किलो गोबर तथा 25 किलो पानी प्रति घन मीटर की संयंत्र की क्षमता के मान से करना चाहिए।

रख रखाव–

- गैस बर्नर और बायोगैस बत्ती के नोजल को सप्ताह में एक बार जरूर साफ करें।
- आउट लेट से डायजेस्टर की स्लरी हिलाने के लिए बाँस का उपयोग करें।
- मेन बाल्व, गैस निकासी पाइप और दूसरी पाइप फिटिंग आदि को माह में एकबार साबुन पानी से जाँच करें देखें कि कहीं कोई गैस रिसन तो नहीं हो रहा है।
- यदि के. वी. आई. सी. संयन्त्र लगा हो तो उसके ड्रम को साफ करके काले रंग के इनामेल पेंट से पोत दें।
- वर्ष में एक बार दीनबन्धु संयन्त्र का गैस किट वाल्व खोलकर निकाल देना चाहिये इसके बाद स्लरी के स्तर की आउट लेट टंकी में जाँच करें। यदि स्लरी का स्तर आउट लेट टंकी की निचली सतह (नीचे से दूसरी सीढी) से ऊपर है तो उसे निकाल कर दूसरी सीढी तक निकालकर ले आना चाहिये। यदि पची स्लरी प्रतिदिन संयंत्र से नहीं निकलती तब इस प्रकार की चेकिंग सप्ताह में भी की जा सकती है।
- पाँच वर्ष में एक बार पूर्ण रूप से खाली करके साफ करके अंदर चेक करके डोम में इनामेल या इपाक्सी पेंट लगायें और पुनः ताजा गोबर से संयंत्र को भरें।

बायोखाद

बायोगैस संयंत्र से जो गोबर का घोल बाहर निकलता है उसे बायो खाद (पाचित स्लरी) कहते हैं। संयंत्र में डाले गये गोबर का लगभग 10 प्रतिशत भाग गैस में परिवर्तित हो जाता है। शेष भाग बायोखाद के रूप में होता है। 2 घन मीटर बायोगैस संयंत्र से प्रतिदिन लगभग 90 किलोग्राम बायोखाद प्राप्त होती है।

बायोखाद एक उत्तम किस्म की खाद होती है। इसमें फसलों के लिए मुख्य आवश्यक पोषक तत्व नाइट्रोजन, फास्फोरस, देशी खाद की तुलना में अधिक मात्रा में पाये जाते हैं जो इस प्रकार हैं–

पोषक तत्व	बायोखाद	देशी खाद
नाइट्रोजन	1.5 –2.0 %	0.5 – 1.0 %
फास्फोरस	1.0 %	0.5 – 0.8 %
पोटेशियम	1.0 %	0.5 – 0.8 %

देशी खाद में खरपतवार के बीज नष्ट नहीं हो पाते, जबकि संयंत्र में गोबर के साथ-साथ खरपतवार के बीजों का किष्वन (नष्ट) हो जाता है जिससे बायोखाद खरपतवार बीज विहीन हो जाता है। बायोखाद का उपयोग किसी भी फसल एवं भूमि पर प्रभावकारी होता है। सिंचित भूमि में इसे 4 टन प्रति एकड़ असिंचित भूमि में 2 टन प्रति एकड़ की दर से दिया जा सकता है और 15 से 50 प्रतिशत तक पैदावर बढ़ाई जा सकती है।

बायोखाद के लाभ–

- यह पूर्ण सड़ी हुई जैविक खाद होती है।
- इसमें किसी प्रकार की सड़ांध नहीं आती और न ही हानिकारक कीड़े–मकोड़े पैदा होते।
- इसके एक बार के उपयोग से भूमि की उर्वरा शक्ति 3 वर्ष तक बराबर बनी रहती है।
- नमी अधिक समय तक बनी रहने के कारण कई प्रकार के उर्वरता बढ़ाने वाले जीवाणु एवं केंचुए पनपते हैं जो भूमि को उपजाऊ बनाने में मदद करते हैं।
- बायोखाद से उपचारित किये हुये बीज जल्दी और अधिक संख्या में अंकुरित होते हैं। अंकुरित बीजों में बीमारियाँ नहीं लगती, जड़े स्वस्थ्य मजबूत बनती हैं।
- नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटेशियम के अतिरिक्त अन्य सूक्ष्म पोषक तत्व जैसे –तांबा, लोहा, जस्ता, कैल्सियम, बोरान आदि भी उचित मात्रा में पाये जाते हैं।

उपयोग करने की विधि–

इसका उपयोग निम्न प्रकार से किया जा सकता है–

1. घोल रूप में–घोल रूप में बायोखाद का उपयोग करने पर अधिक लाभ होता है। बाल्टी या ड्रम में नीचे एक 10 मिली.मी. का छेद कर नली लगा देते हैं। नली पर वाल्व लगा देते हैं। जिससे स्लरी को बहते हुए पानी मे मिलाया जा सके।

2. सुखाकर–स्लरी का उपयोग प्रतिदिन न कर पाने की स्थिति में उसे सुखाकर उपयोग में लाया जाता है। सूखने पर ढेले में परिवर्तित हो जाती है, इसलिए इसको खेत में डालने से पूर्व टुकड़ों में तोड़ देना चाहिए।

बायोगैस संयन्त्र से बिजली का उत्पादन

गोबर गैस संयंत्र से जनरेटर चलाकर बिजली पैदा की जा सकती है। गोबर गैस से चलाये गये जनरेटर में 20 प्रतिशत डीजल का उपयोग होता है जो कम प्रदूषणकारी होता है। जनरेटर से उत्पन्न हुई बिजली से मोटर तथा पंखे इत्यादि चलाये जा सकते है। यदि बिजली की कीमत की ओर ध्यान दिया जाय तो लगभग 25 हजार रूपये प्रति

किलोवाट की लागत थर्मल विद्युत संयंत्र में आती है। रासायनिक खाद के कारखाने में लागत लगभग 1 हजार करोड़ रूपये आती है। गोबर गैस, विद्युत तथा खाद दोनों की पूर्ति करती है। विद्युत प्रणाली पर जो इतना दबाव बढ़ रहा है, वह कम होकर उतनी ही विद्युत किसी ग्रामीण औद्योगिक विकास में लायी जा सकती है। इसके संयन्त्र में लागत बहुत कम आती है। गोबर गैस संयन्त्रो के लगने से विद्युत और रासायनिक खाद के कारखानों में लगने वाली विदेशी और स्वदेशी मुद्रा की बचत होगी। जिससे देश का आर्थिक आधार सुदृढ़ होगा और स्वावलम्बन में वृद्धि होगी।

एक आदर्श गोबर गैस संयन्त्र युग-तीर्थ आँवलखेड़ा (आगरा) में देखा भी जा सकता है।

8

जैव विविधता संरक्षण एवं सतत् विकास

विश्व में पर्यावरणीय सन्तुलन का मुख्य आधार जैव विविधता है। विकास की वर्तमान प्रक्रिया एवं आधुनिकता के परिणामस्वरूप विश्व के अनेक क्षेत्रों से जैव विविधता विनष्ट हो रही है। आज हम यह भूल गये हैं कि विविधता ही प्राकृतिक सुरक्षा का कारण होती है। आदिम काल से ही मानव अपने भोजन के लिए शिकार करने अथवा मछली पकड़ने इत्यादि पर निर्भर रहता था। हमारे पूर्वजों ने धीरे-धीरे जंगलों से पौधों इत्यादि की लाखों ऐसी प्रजातियों की जानकारी प्राप्त कीं जो उनके खाने के लिए सुरक्षित थी। आज इनमें से बहुत सारी प्रजातियाँ विश्व से बिलुप्त हो चुकी हैं और कुछ अन्य प्रजातियों के लिए संरक्षण की चुनौती उत्पन्न हो गयी है। मनुष्य प्रकृति का एक अंश है और प्रकृति मानव का विस्तार है। अतः किसी भी जैविक प्रजाति का विनाश न केवल मानव को अकेला बनाता है, अपितु विनाश के पथ पर अग्रसारित कर रहा है। अतः जैव विविधता का संरक्षण जहाँ समस्त मानवता की सुरक्षा के लिए आवश्यक हो गया है, वहीं यह भावी खाद्य सुरक्षा की आवश्यकता के लिए भी एक महत्वपूर्ण मुद्दा बन गया है।

पारिस्थितिकी तंत्र से प्राप्त होने वाली वस्तुएँ एवं सेवाओं का मानव जीवन का अस्तित्व निर्भर है। हर प्रजातियों के साथ उसका महत्व जुड़ा हुआ है। प्रत्येक प्रजाति किसी न किसी रूप में महत्वपूर्ण है। हर प्रजाति में एक विशिष्ट क्षमता होती है और यदि हम उसे खोते हैं तो हमारे लिये वह बहुत हानिकारक होता है। समाज की आवश्यकता प्रकृति से पूरी होती है। अतः प्रकृति में विद्यमान प्रजातियों का हमारे जीवन में महत्व है। जैव विविधता पृथ्वी पर जीवन की विविधता है। इसमें समस्त जीव जन्तु वनस्पति एवं जीवाणु सम्मिलित है। इस विविधता के तीन घटक हैं–

(क) प्रजातियाँ

(ख) इको सिस्टम (पारिस्थितिकी)

(ग) एक प्रजाति की अलग-अलग किस्में

वैज्ञानिक किसी इको-सिस्टम (पारिस्थितिकी) की जैव विविधता को विभिन्न प्रजातियों की संख्या एवं एक प्रजाति में पाई जाने वाली जीन्स की विविधता से नापते हैं। पृथ्वी पर अनुमानतः 10 करोड़ प्रजातियों में से 17 लाख की पहचान कर ली गई

है। बड़ी संख्या में जीवों की प्रजातियाँ गहरे समुद्रों कोरल रीफ, ऊष्ण कटिबंधीय वनों एवं पहाड़ी क्षेत्रों में पाई जाती है। इसे इको-सिस्टम का वैविध्य कहते हैं।

जैव विविधता की समस्या के उद्भव के पीछे सबसे प्रमुख कारण बड़े–बड़े बाँधों, सड़कों एवं रेलवे लाइन इत्यादि का बनना तथा जंगलों में बड़े पैमाने पर खनन कार्य प्रारम्भ करना रहा है। वर्तमान समय में वैध एवं अवैध ढंग से अनेक परियोजनाएँ वन क्षेत्रों में संचालित की जा रही है जो जैव विविधता के लिए सबसे बड़ी बाधा के रूप में उभर कर आयी है। जनसंख्या में तीव्र गति से हो रही वृद्धि भी इसके एक प्रमुख कारणों में से एक है। आधुनिक जीवन शैली भी जैव विविधता के लिए चुनौती के रूप में उभर कर आयी हैं। खेती में प्रयोग की जा रही रासायनिक खाद एवं कीटनाशक दवाओं ने भी इस समस्या को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

जैव विविधता के अन्तर्गत सबसे प्रमुख आवश्यकता वानस्पतिक विविधता के संरक्षण की है। विभिन्न स्थानों में पायी जाने वाली जंगली वनस्पति (जड़ी–बूटी भी सम्मिलित) एवं लघु वनोपज इत्यादि समाहित हैं। एशिया के अनेक देशों में अपार वानस्पतिक विविधता अभी भी विद्यमान है जिसके ऊपर ग्रामीण आजीविका एवं आदिवासी समाज का जीविकोपार्जन जुड़ा हुआ है। विभिन्न वनस्पतियों एवं कृषि के अनेकानेक पारम्परिक फसलों के संरक्षण के द्वारा परम्परागत समाज के ज्ञान के मान्यताओं को भी संरक्षित किया जाना आवश्यक है।

ग्रामीण अंचल के किसानों द्वारा 1950 तक लगभग 30 हजार परम्परागत फसलों के किस्में को उगाया जाता रहा है। जिसमें 22 हजार किस्में मात्र धान की सम्मिलित हैं। आज इनमें से अधिकांश किस्में समाप्त हो चुकी हैं। जंगलों के विनाश से अनेक जंगली जानवरों का प्रकोप रहा ऐसी इलाकों में हो रहा है जिससे किसानों की फसलों एवं मनुष्यों के अस्तित्व के लिए खतरा पैदा हो रहा है।

जैव विविधता के लिए वर्तमान समय में एक और खतरा जंगली जीव–जंतुओं की अनेक प्रजातियों का विलुप्त होना है। उदाहरण के लिए बारहसिंगा केवल राष्ट्रीय उद्यानों की शोभा बढ़ा रहा है। इन जन्तुओं का मानव से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसी प्रकार अनेक पालतू जीव-जन्तुओं, जैस-भैंस, बकरी, सुअर, बतख, इत्यादि की प्रजातियाँ भी धीरे–धीरे समाप्त हो रही है। प्रयोगशालाओं में हम टनों मेढ़कों को प्रयोग के नाम पर मार डालते हैं। इसके कारण मच्छरों एवं अन्य बहुत से हानिकारक कीड़ों की संख्या बढ़ रही है।

जैव विविधता संरक्षण क्यों ?

- जीवों में विभिन्न प्रजातियों एवं पारिस्थिकीय तंत्र (इको-सिस्टम) से प्राप्त होने वाली वस्तुओं एवं सेवाओं से मानव जीवन का अस्तित्व संभव है।
- कीट पतंगे, मधुमक्खी खरबों रुपये की सेवा किसानों को परागकणों को स्थानान्तरित कर देते हैं।

- लगभग 6,000 प्रकार के पौधों का उपयोग विभिन्न रोगों के उपचार में होता है।
- जीवन को चलाने वाली महत्वपूर्ण सेवाए जैसे पानी एवं प्राण वायु के साथ मनोरंजन भी पारिस्थितिकी तत्व की देन है।
- तकनीकी उद्योगों कृषि, मछली पालन से अर्थ व्यवस्था संचालित है।
- विभिन्न किस्म के पौधों की खेती द्वारा एवं जीवों को पालकर भोजन प्राप्त होता है।
- मनुष्य की कल्पना एवं कला के लिये प्रकृति स्वयं एक कल्पना ही है।
- कीड़े खाने वाले जीव जन्तु अरबों रुपये की कीटनाशक की बचत करते हैं।
- वर्तमान बाजार में उपलब्ध दवाइयाँ लगभग 80 प्रतिशत पौधों, कवकों एवं अन्य जीवों से प्राप्त होती है।
- मानव जीवन को जीवों से सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक समृद्धता एवं राष्ट्रीय प्रतीक मिले हैं।

जैव विविधता संरक्षण में प्रजाति का संरक्षण सुनिश्चित करने के लिये उस प्रजाति से सम्बन्धित अनुकूल स्थितियों को समझना होगा। प्रतिकूल परिस्थितियों में प्रजाति को जीवित रहने के लिये संघर्ष करना होता है। संघर्ष करने की क्षमता से उसे प्रकृति के अनुरूप स्वयं को ढालने में मदद मिलती है।

जैव विविधता संरक्षण के लिये समाज की बदलती आवश्यकताओं को भी सामने रखना होगा। समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति जैव विविधता भण्डार द्वारा ही की जाती है। आवश्यकताओं की पूर्ति सुनिश्चित करके ही संरक्षण सुनिश्चित किया जा सकता है। जैव विविधता समृद्धि व सुरक्षा से जुड़ी है। यह हमारी भविष्य में होने वाली आर्थिक समृद्धि व सुरक्षा का बीमा है।

अन्तिम बात

विगत 25 वर्षों में मनुष्य के सामने विकास के प्रतिमानों को चुनौती देने वाली मुद्दे तेजी से उभर कर आये हैं। अब यह निश्चित रूप से माना जाने लगा है, कि प्रकृति और मानवता परस्पर पूरक हैं। एक का अस्तित्व दूसरे के बने रहने पर ही है। परिस्थितिकी और आर्थिक विकास दोनों ही आज आवश्यक हो गये हैं। विकास के परिणामस्वरूप भावी पीढ़ियों का भविष्य खतरे में न पड़े इसी सोच का परिणाम है, सतत् विकास की अवधारणा। पुस्तक के विगत अध्यायों में विस्तृत चर्चा के परिणामस्वरूप निम्नांकित मुद्दे उभर कर सामने आये हैं–

- **जब आवै सन्तोष धन......................**

भारत में सनातन से यह परम्परा रही है कि सुख कामनाओं के अभाव में ही निहित है। यहाँ पर कबीर के इस सिद्धान्त **"मैं भी भूखा ना रहूँ साधु न भूखा जाय"** पर लोगों के चलने की प्रवृत्ति रही है। वास्तव में सतत् विकास की अवधारणा उसी सनातन आध्यात्मिक परम्परा की तरफ हमें ले जा रही है। अब यह फिर से माना जाने लगा है कि प्रकृति से हमें उतना ही लेना चाहिए जितना कि हमें आवश्यकता है। गाँधीजी का कहना था कि इस पृथ्वी पर सभी के लिए आवश्यक संसाधन उपलब्ध हैं, किन्तु एक लालची व्यक्ति के लिए पूरी पृथ्वी कम है। सतत विकास के लिए सबसे पहले भौतिक समृद्धि के पीछे चल रही अंधी दौड़ को रोकना आवश्यक है।

- **रहिमन पानी राखिये..........................**

जल ही जीवन है। यही कारण है कि समस्त प्राचीन सभ्यताएँ नदियों के किनारे पायी जाती है। आज पानी दूध के भाव बिक रहा है। यदि समय रहते ध्यान न दिया गया तो यह घी के भाव बिकेगा फिर भी मिलना मुश्किल होगा। ऐसी स्थिति में जबकि पीने के लिए पानी उपलब्ध नहीं हो पा रहा हो फसलों के लिए सिंचाई की सुविधा जुटाना कठिन होगा। सातत्यता के लिए पानी का संरक्षण एवं उचित प्रबंधन आवश्यक है। वर्तमान समय में विश्व में तेल के आधिपत्य एवं आतंकवाद की समस्या के चलते विश्व

में युद्ध के बादल मड़रा रहे हैं किन्तु समय रहते यदि ध्यान नहीं दिया गया तो निकट भविष्य में जल्द ही पानी को लेकर विश्व युद्ध होना अवश्यम्भावी हो जायेगा। अतः पूरे विश्व में जल के प्रबन्धन की आवश्यकता है। राजस्थान में अलवर जिले में राजेन्द्र सिंह ने जल प्रबन्धन के माध्यम से सुखी हुई नदी को पुनः प्रवाहित कर दिया है। यह विश्व के अन्य ऐसे देशों के लिए प्रादर्श का काम करेंगा जहाँ पर पीने के पानी का संकट बरकरार है।

- **अति का भला न बरसना अति की भली न धूप..................................**

आज अपनी वार्षिक वृद्वि का कुल दसवाँ भाग ही उपयोग में ला पाता है। यहाँ तक की अब से 40 वर्ष बाद भी केवल एक चौथाई भाग ही प्रयोग में लाया जा सकेगा। यद्यपि हमारे देश में पर्याप्त जल संप्रदा उपलब्ध है। किन्तु प्रकृति का यह वरदान अल्प समय के लिए होता है। इस प्राकृति ने यहाँ विशाल वन खंड, भू-जलाशय, तालाब इत्यादि प्रदान किए हैं। पर्यावरणीय उसमें के कारण देश का यह जलसंतुलन बिगड़ता जा रहा है। अब बाढ़ और सूखा पहले से अधिक आने लगा है। जहाँ एक तरफ वर्षा की भाग में कमी ही रही जिससे सूखे भी स्थिति निर्मित हो रही है। वहीं पर बाढ़ जैसी प्राकृतिक वियदा की संख्या एवं उसके कारण भरने वालों की संख्या तथा सम्पत्ति के नुकसान की मात्रा बढ़ती जा रही है। आगे का विद्धानों ने बाढ़ व सूखा जैसी प्राकृतिक वियदाओं अथवा मानव निर्मित आपदाओं के रूप पुकारना अधिक उचित माना है। अतः इसमें संतुलन बनाये रखना अति आवश्यक है।

- **सर्वे भवन्तु सुखिनः..................................**

सतत् विकास अवधारणा में सबको प्रसन्न रखने की बात कही गयी है। इसमें व्यष्टि के साथ ही साथ समष्टि का सुख समाहित है। इसके अन्तर्गत वर्तमान के साथ ही साथ भविष्य के सुख की भी चिंता की गयी है। यह माना जा रहा है कि यदि कोई व्यक्ति भूखा नंगा है तो वह अमीर के सुख को भी बाधित करेगा। एक देश में पर्यावरण प्रदूषित होगा तो विश्व के अन्य देश भी उससे प्रभावित होंगे। अतः सभी सुखी हों, सभी निरोगी हों, सबका कल्याण हो एवं किसी से भी किसी को हानि न हो, यही सतत् विकास का लक्ष्य है।

- **ढाई अक्षर प्रेम का..................................**

सतत् विकास में शिक्षा एवं प्रशिक्षण का विशेष महत्व है। बगैर जागरुकता के व्यक्ति अपने पुराने मानसिकता को परिवर्तित नहीं कर सकता। यहाँ पर शिक्षा में औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनों प्रकार की शिक्षा समाहित है। गाँवों में बहुत सारे

अनपढ़ एवं कम पढ़े–लिखे लोग पढ़े-लिखे लोगों की अपेक्षा अधिक समझदार होते हैं। पुराने समय में अनपढ़ महिलाएँ अनाज भण्डारण का ऐसा ज्ञान रखती थीं, जिससे अनाज वर्षों तक बिना कीटनाशक के प्रयोग के सुरक्षित रखा जाता था, किन्तु अब पढ़े-लिखे लोग अनाज की सुरक्षा के लिए उसमें जहर मिलाते हैं जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। अतः समाज को शिक्षित एवं प्रशिक्षित करके ही उन तक सही संदेश पहुँचाया जा सकता है। "सा विद्या या विमुक्तये" अर्थात् सच्ची शिक्षा वहीं है जो लोगों को गरीबी, बेरोजगारी, भुखमरी, अन्याय, असमानता, उत्पीड़न, अज्ञान इत्यादि से मुक्त करके लोगों में प्रेम, सद्भाव, ज्ञान, सुख एवं समृद्धि लाये।

- **खग मृग बसत निरोग वन..............................**

समाज के विकास का एक मापदण्ड वहाँ के लोगों का आरोग्य है। हम प्रायः बीमार पड़ने पर स्वस्थ्य होने के लिए उपचार कराते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि हम बीमार ही न पड़े। इसके लिए स्वच्छता, साफ-सफाई, जल एवं वायु इत्यादि के प्रदूषण तथा खान-पान एवं आचार-व्यवहार पर नियंत्रण करके सदैव निरोग रह सकते हैं। मानव जितना ही प्रकृति के समीप रहेगा उतना ही स्वस्थ्य रहेगा। जंगल में रहने वाले पशु-पक्षी प्रायः कम बीमार पड़ते हैं। अतः सतत् विकास प्रकृति के तरफ पुनः लौटने की प्रकिया पर बल देता है। वर्तमान समय में लोगों का आहार-बिहार इतना अप्राकृतिक हो गया है कि लोग विभिन्न प्रकार के व्याधियों से ग्रस्त होते जा रहें हैं। प्रजनन सम्बंधी स्वास्थ्य की जानकारी के अभाव में विश्व की जनसंख्या अनियन्त्रित ढंग से बढ़ती चली जा रही हैं जोकि स्वयं में एक समस्या बन गयी है। महिलाओं एवं बच्चों के स्वास्थ्य की समस्यायें समस्त विकासशील देशों में व्याप्त है। इन समस्त समस्याओं के निपटारे का एक मात्र साधन प्रकृति की अधिक से अधिक निकटता है।

- **धरती कहे पुकार व्यथा है भारी...............................**

सारी जीवन सृष्टि भूमि पर टिकी हुयी है। उपजाऊ भूमि के सहारे मानव बस्तियाँ बनी हैं। जब-जब मानव ने भूमि का स्वभाव न जानकर मनमानी किया है तो सभ्यताएँ विनष्ट हो गयीं। पहाड़, भूमि, नदी, जंगल इनका आपसी लेन-देन चलता है। पेड़ कट गया तो बारिश की सीधी मार से भूमि कटती है। पहाड़ों में पानी का संचय न होने से नदी नाले जल्दी सूख जाते हैं। पानी न मिलने से पेड-पौधे सूख जाते हैं। अब यह बात सिद्ध हो चुकी है कि अधिक उपज के चक्कर में रासायनिक खादों एवं कीटनाशकों के प्रयोग से भूमि बंजर होती जा रही है। जैविक खेती इस समस्या के समाधान के रूप में उभर कर आयी है। धरती के ऊपर प्राप्त होने वाले संसाधनों का निरन्तर किये जा रहे दुरुपयोग के चलते आज पृथवी के संसाधन समाप्त होते जा रहें हैं तथा पृथ्वी की उर्वरा

शक्ति भी समाप्त होती जा रही है। ऐसी स्थिति में भारत में परम्परागत रूप से अपनाई जाने वाली प्राकृतिक खेती ही इसका विकल्प बन सकती है। जिससे पुनः धरती को समृद्ध बनाया जा सकता है।

- **मैं भी भूखा ना रहूँ..............................**

जब तक सबको रोटी सबको काम की उपलब्धता नहीं हो जाती तब तक एक स्वथ्य समाज का निर्माण सम्भव नहीं है। इसके लिए आजीविका के नए आयामों का सृजन आवश्यक है। अभी तक जनसंख्या का एक बड़ा भाग कृषि और जंगल पर निर्भर है, जहाँ छिपी हुई बेरोजगारी से लाभ के बजाय हानि की प्राप्ति हो रही है। भारत सहित अनेकों विकासशील देशों में आज भी भूख से मौत हो रही हैं, जो मानवता के नाम पर कलंक है। इसके पीछे कहीं न कहीं असमान वितरण की व्यवस्था उत्तरदायी है जो सामाजिक न्याय के नारे पर कालिख पोतने का कार्य कर रही है। अतः आवश्यकता है हर पेट को रोटी और हर हाथ को काम उपलब्ध कराने को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की जाये।

- **रहिमन धागा प्रेम का ....**

प्राचीन काल में छोटे–छोटे नगर राज्य हुआ करते थे। एक स्थान से दूसरे स्थान तक आना-जाना कठिन कार्य था, किन्तु आज वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति तथा यातायात एवं संचार के साधनों पर वृद्धि के परिणामस्वरूप समस्त विश्व एक परिवार के समान हो गया है। विश्व के किसी भी भाग में घटने वाली घटना पूरे विश्व को प्रभावित करती है। युद्ध ईराक में होता है, किन्तु तेल की कीमत भारत में बढ़ती है। ऐसे में मानवता की सुरक्षा के लिए यह आवश्यक है कि हम अपने छोटे-मोटे स्वार्थों से उत्पन्न विवादों को छोड़कर वसुधैव कुटुम्बकम की भावना को अंगीकार करें। वर्तमान समय में विश्व में अनेक संहारक अस्त्रों के निर्माण से समस्त मानवता को खतरा है। आवश्यकता इस बात की है कि हिंसा के बजाय हम अहिंसा के मार्ग पर चलें, शक्ति के बजाय प्रेम एवं सद्भावना का प्रयोग करें, युद्ध के बजाय शान्ति को प्रोत्साहित करें।

- **सब मम प्रिय सब मम उपजाये.......................**

समस्त विश्व में चाहे जो कुछ भी है सबका अस्तित्व बना रखना आवश्यक है। विशेष रूप से आज जैव विविधता के संरक्षण की समस्या एक चुनौती के रूप में उभरकर आयी है। पृथ्वी पर पाये जाने वाले सभी जीव-जन्तुओं एवं पेड़-पौधों की अपनी उपयोगिता है। वर्तमान विकास ने अनेक प्रजातियों के विलुप्त होने का मार्ग प्रशस्त किया है। इसका दुष्प्रभाव आने वाली पीढ़ियो के ऊपर पड़ेगा। अतः जैव विविधता को बनाये रखना सतत् विकास के लिए आवश्यक है।

- **इस सबके लिए क्या करें..............................**

1. प्रकृति द्वारा प्रदत्त वरदान को अच्छी तरह समझें ।
2. प्राकृतिक सुविधाओं की गुणवत्ता को और बेहतर बनायें।
3. परस्पर पूरकता के मार्ग को प्रशस्त करें।
4. जनता को इसके लिए शिक्षित एवं जागरुक करें।
5. जीवनशैली में बदलाव लायें ।
6. पर्यावरणीय प्रदूषण को रोकने के लिए कार्य करें ।
7. वर्तमान के साथ ही साथ भावी पीढ़ियों के अस्तित्व की सुरक्षा के लिए कार्य करें।
8. जैव विविधता को बनाये रखें।
9. राष्ट्रीय स्तंर पर नीति निर्धारण करें।
10. बार-बार उपयोग होने वाले संसाधनों का प्रयोग करें।
11. स्थानीय संसधानों की सुरक्षा करें।
12. रासायनिक खादों एवं कीटनाशकों के प्रयोग से बचें।
13. सबके लिये भोजन और सबके लिए काम के लिए प्रयास करें।
14. बंजर एवं अनुपयोगी भूमि का सदुपयोग करें।
15. जैव ऊर्जा पर निर्भरता बढ़ायें।

सतत् विकास के लिए प्रस्तुत की गई उपरोक्त व्यवस्थाओं की मान्यताओं को कुछ लोग अति आदर्शवादी एवं अव्यावहारिक तक कह सकते हैं। किन्तु यदि हम दुनिया के परिदृश्य को भावी पीढ़ी के सुख एवं अस्तित्व के नजरिये से देखे तो ये अवधारणाएँ न केवल नैसर्गिक जैसी लगती हैं। वरन् वे वास्तविकता से इतनी गहराई से जुड़ी दिखाई देती हैं, जिन पर ईमानदारी से अमल अनिवार्य लगता है। उसमें अनावश्यक विलम्ब पूरी मानव जाति के लिए बहुत मंहगा साबित हो सकता है। आज की केन्द्रीकृत पूंजीवादी व्यवस्था कितनी क्षण-भंगुर है और गगनचुम्बी अट्टालिक किस तरह रेत की बुनियाद पर खडी की जा रही है, यह ओसामाबिन लादेन जैसे अदना से व्यक्ति की 11 नवम्बर, 2001 को अमेरिका के वर्ड ट्रेड सेंटर के ऊपर हुए आक्रमण के एक झटके से साबित हो गया है। अतः मानव समाज के अस्तित्व की यदि हमें सुरक्षा करनी है तो दो बुनियाद मान्यताओं को हमें अंगीकृत करना आबश्यक हो जाता है, **पहली**–अपनी परम्परा एवं सांस्कृतिक मान्यताओं के अनुसार मानवीय समाज की व्यवस्था संचालित करना तथा **दूसरी**–समस्त नैसर्गिक संसाधनों के ऊपर कुछ लोगों का आधिपत्य एवं अंधाधुन्ध दोहन के बजाय समस्त समाज के नैसर्गिक अधिकार को बनाये रखना।

विभिन्न देशों के गलत औद्योगिक एवं वन्य निधियों (वनोत्याद) के कारण समस्त मानव समाज के समक्ष जो संकट उत्पन्न हो गया है उसके विकल्प के लिए तथा सृष्टि, पर्यावरण, भूमि, वनस्पति, जैविक विविधता एवं मानवता की सुरक्षा एवं संरक्षण के लिए अंततः समस्त विश्व को सतत् विकास के पथ पर अग्रसरित होना ही पड़ेगा, क्योंकि इसके

बगैर इस पृथ्वी, जंगल एवं जमीन पर मंडरा रही विनाश की परछाई से मुक्ति पाना संभव नहीं है। अतः मानव भी अविष्कार, खोज, जल का उपयोग, पुर्नरचना एवं निर्माण तो करें। यह बुद्धिमानी पूर्ण होना चाहिए अन्यथा विकाश के गर्त में जाने से मानवता की कोई भी नहीं बना सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. एस. सी. दुबे – विकास का समाजशास्त्र, 1996 दिल्ली .
2. ब्रण्टलैण्ड – 'आवर कामन फ्यूचर' रिपोर्ट यू. एन. ओ.
3. मौरिस स्ट्रांग एवं आइसेक – 'कांसेप्ट आफ इर्को डेवलपमेंट,1970 .
4. प्रकृति का क्रोध – 'विज्ञान एवं पर्यावरण केन्द्र' 1197.
5. गुन्नार हेगमैन – 'प्रिवेन्शन बेटर पैन क्योर' रिपोर्ट आन ह्यूमन एण्ड एनवायरन मॅटल डिजास्टर इन थर्ड वर्ल्ड जनेवा, 1984
6. सी. पी. भट्ट – 'हिमालय की चेतावनी' दिनमान, नई दिल्ली 17–23, सितम्बर 1973 .
7. डा० आर. सी. सिंह – सस्टे नेवल डवलमैंट–विजन एण्ड आप्सन, बी. एस. शर्मा ब्रदर्स आगरा, 2001 .
8. एस. सी. दुबे – 'विकास का समाजशास्त्र' वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999
9. 'ग्रामीण विकास एवं प्रबंधक – डा० गुरुदेव उपाध्याय, बी. एस. शर्मा एण्ड ब्रदर्स, आगरा, 2001.
10. ए. आर. देसाई – 'भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र' रावत पब्लिकेशन दिल्ली, 1990 .
11. ग्राम विकास – कार्यक्रमों पर एक नजर–भारत सरकार ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा प्रकाशित, मई 2001.
12. त्रिवेदी, सिंह एवं सुदर्शन – 'सस्टेनेवल डवेलपमेंट'–ग्लोवल परसपंक्टिव' नई दिल्ली, 1994.

डॉ. अमरजीत सिंह

शिक्षा	:	एम. ए. राजनीतिशास्त्र (गोल्ड मेडलिस्ट) पीएच. डी.
जन्म	:	गारी पचडेवरा, गाजीपुर (उ. प्र.)
अध्यापन	:	डॉ. हरि सिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर।

पंचायती राज एवं ग्रामस्वराज से सम्बन्धित अनेक परियोजनाओं का संचालन।

अन्य पुस्तकें :

- मध्यप्रदेश में पंचायती राज का नया दौर
- पंचायत चालीसा
- ग्रामस्वराज
- विकेन्द्रीकृत नियोजन एवं सहभागी विकास

सम्प्रति महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट, सतना (म. प्र.) में अधिष्ठाता मानविकी एवं समाजिक विज्ञान संकाय के रूप में कार्यरत।

Rs. 300

[redacted]

28, Mangalam Vihar,
Sikandra-Bodla Road, Agra-282 007
Ph.: 9412425612, 3104192

Nitin (0562)2581414